जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी-भूषण, विशारद
आदर्श-ग्रंथमाला
दारागंज, प्रयाग

[सर्वाधिकार प्रकाशक-द्वारा सुरक्षित]

मुद्रक—
विजयबहादुरसिंह, बी० ए०
महाशक्ति-प्रेस,
बुलानाला, बनारस सिटी

भूमिका

'वीरभोग्या वसुन्धरा'—संसार वीरों की कर्मभूमि है। मानव-जीवन का उद्देश्य पुरुषार्थ है। जितने मनुष्य इस संसार में अवतरित होते हैं, उन्हें अपने जीवन-निर्वाह, सुख एवं उत्कर्ष के लिए अनेक श्रम और उद्योग करने पड़ते हैं। सभी को अपनी रक्षा, कुटुम्ब-पालन, समाज एवं देश-सेवा के लिए विभिन्न प्रयत्न करना अनिवार्य होता है। सुख, उन्नति और यश की लालसा प्रत्येक मनुष्य के हृदय में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान रहती है। सुख और यश—दोनों की लालसाएँ मनुष्य के प्राकृतिक गुण हैं। मनुष्य की अभिलाषाएँ अनन्त होती हैं। हम उन्हें भौतिक और आध्यात्मिक—दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं। इनकी सफलता और उत्कर्ष के लिए व्यक्ति में पुरुषार्थ अपेक्षित होता है। स्वास्थ्य, श्रम, अध्यवसाय, तन्मयता एवं शौर्य जितने भौतिक उत्कर्ष के लिए आवश्यक हैं, उतने ही आध्यात्मिक विकास के लिए भी अनिवार्य हैं।

संसार समर-भूमि है। जिस प्रकार युद्धस्थल में रणदेवी समर-कुशल वीर-योद्धा को विजय का हार पहनाती है, उसी प्रकार संसार भी स्वस्थ, सबल, शक्तिशाली एवं कर्मण्य पुरुष का ही आदर करता है और विश्व की ऋद्धि, सिद्धि आदि अनन्त विभूतियाँ उसके सम्मुख नतमस्तक हो करबद्ध खड़ी रहती हैं। संसार में कर्मण्यों का राज्य है। किन्तु यह अकर्मण्यों के उपयुक्त नहीं। उन्हें इसमें नैराश्य ही हस्तगत होता है। सांसारिक सुखोपभोग

एवं विमल यश-कीर्ति के अभिलाषी को वीर और कर्मण्य होना आवश्यक ही नहीं; बल्कि अनिवार्य है।

पुरुषार्थ और स्वास्थ्य का ठीक वही सम्बन्ध है जो प्राण और शरीर का है। जिस प्रकार प्राण से रहित शरीर निर्जीव हो पंचतत्व में मिल जाता है, उसी तरह स्वास्थ्य-विहीन निर्वीर्य पुरुष किसी प्रकार का पुरुषार्थ करने में असफल एवं भग्न हृदय होकर स्वयं अपने ही लिए भार-स्वरूप हो जाता है। अतः पुरुषार्थ के लिए स्वास्थ्य की सर्व प्रथम आवश्यकता है। कहा है—'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनं'। शरीर की रक्षा करना एवं इसे स्वस्थ बनाना ही मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धर्म है। स्वस्थ रहने ही पर मनुष्य अन्य धर्मों का यथोचित पालन कर सकता है। यदि शरीर शक्तिमान, बलिष्ठ और नीरोग है, तो मनुष्य अनेक विपरीत परिस्थितियों से आक्रान्त रहने पर भी जीवन की आवश्यक वस्तुओं का संग्रह करते हुए समाज एवं देश की सेवा कर अपनी अमरकीर्ति स्थापित कर सकता है। किन्तु यदि वह अस्वस्थ है, व्याधियों से जर्जर होकर त्राहि-त्राहि कर रहा है, तो समस्त सांसारिक वैभव एवं सुख-साधन के रहने पर भी वह उससे कुछ लाभ नहीं उठा सकता। अतः स्वास्थ्य की रक्षा कर इसे पुष्ट और सबल बनाना मानव-जीवन का प्रथम और परम कर्तव्य धर्म है।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए ब्रह्मचर्य पालन ही एकमात्र विधि है। मानव-शरीर में वीर्य ही प्रधान वस्तु है। वीर्य का धारण करना ही ब्रह्मचर्य है। वीर्य ही शौर्य, तेज, साहस, उत्साह एवं अध्यवसाय का जनक है। जो व्यक्ति प्राकृतिक नियमों का पालन करते हुए अपने वीर्य की यथाविधि रक्षा करता है उसके लिए संसार का कोई भी कार्य दुरूह नहीं हो सकता।

संसार में स्वास्थ्य ही सर्वश्रेष्ठ शक्ति है। स्वस्थ पुरुष रत्नमय संसार में कभी भी दुःख का अनुभव नहीं कर सकता। एक युग था, जब भारत भौतिक और आध्यात्मिक बल में विश्व का सर्वश्रेष्ठ राष्ट्र माना जाता था। कारण उस युग में लोग ब्रह्मचर्य का पालन यथेष्ट रूप से करते थे। परन्तु आजकल व्यभिचार और दुराचार की जो वृद्धि हो रही है, वह हमारे समाज और देश को रसातल की ओर प्रबल वेग से अग्रसर कर रही है।

देश के इस पतन के मुख्य कारण—आधुनिक शिक्षा-प्रणाली, सामाजिक कुरीतियाँ एवं माता-पिता की अन्यमनस्कता आदि हैं। प्राचीन भारत में विद्यार्थी, शास्त्र अध्ययन के साथ ही ब्रह्मचर्य का यथेष्ट पालन करते थे। किंतु देश के दुर्भाग्य से आधुनिक शिक्षा-पद्धति में विद्यार्थियों को स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य की शिक्षा के अतिरिक्त अन्य सभी अनावश्यक विषयों की शिक्षा दी जाती है। बालकों के संरक्षक मिथ्यालज्जा के कारण उनकी मनोवृत्ति के जानने का प्रयासही नहीं करते। इसी लिए अधिकांश बालक और युवक शरीर-विज्ञान से अनभिज्ञ रहकर कृत्रिम व्यभिचार आदि दुर्व्यसनों में पड़कर अकाल ही प्रकृति का ऋण चुकाने के लिए चल बसते हैं। शरीर-शास्त्र और मुख्यतः जननेन्द्रिय का परिज्ञान युवकों की शिक्षा का प्रधान अंग होना चाहिये।

बालक ही राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। इन्हीं पर देश का उत्कर्ष और अपकर्ष निर्भर करता है। ब्रह्मचर्य के ह्रास के कारण ही देश पराधीनता की शृंखला में आबद्ध होकर कराह रहा है। जबतक युवक समाज शरीर-विज्ञान से अनभिज्ञ रखा जाता है, तब तक अज्ञानता के कारण उसका व्यभिचार में फँस जाना सहज और स्वाभाविक है। देश के उन आदरणीय व्यक्तियों का जिनके हाथ में समाज एवं शिक्षा की बागडोर है; कर्तव्य है कि शिक्षा-विधान में शरीर-

विज्ञान का समावेश करके युवकों में ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य की ज्योति को जागृत करें; जिससे तरुण-समाज विलासिता के गर्त में पतित होनेसे बचकर अपने कुटुम्ब, समाज और देश के उत्थान में सहायक हो सके।

प्रस्तुत 'ब्रह्मचर्य-जीवन' पुस्तक के लेखक महाशय ने हिन्दू समाज की वर्तमान अधोगति का बहुतही सुन्दर चित्रण करते हुए उसके सूक्ष्म एवं मार्मिक कारणों का जो प्रदर्शन किया है, उसे पढ़कर प्रत्येक शिक्षित और सदाचारी मनुष्य का हृदय काँप उठता है। ब्रह्मचर्य की महिमा, उसके ह्रास के कारण, व्यापक अनाचार, सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख करते हुए वीर्य-रक्षा के नियमों का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है; जिनका अनुसरण करके सभी बालक, युवा एवं वृद्ध पुरुष भी अपने जीवन को सुधारकर ब्रह्मचर्य पालन करने में अनेक उपदेश पा सकते हैं। पुस्तक की भाषा सरल, एवं ओजपूर्ण है। पुस्तक सर्वसाधारण के लिए भी उपयोगी है। प्रत्येक सद्गृहस्थ को चाहिये कि पुस्तक की एक प्रति अपने सुकुमार बालकों के हाथ में देकर उनकी रक्षा करें। विश्वास है, गृहस्थ पुस्तक का आदर कर लेखक का उत्साह बढ़ावेंगे।

महाशक्ति-भवन, काशी
२५—२—१९३३

हितचिन्तक—
विजयबहादुरसिंह (बी० ए०)

विषय-सूची

ब्रह्मचर्य-जीवन

१—वर्तमान अवस्था

संसार में सभी सुख चाहते हैं। सभी चाहते हैं कि हमारे शरीर में इतनी शक्तियाँ आकर समा जायँ, जिनके द्वारा हम बड़े-बड़े दुरूह कार्यों को भी पूरा करके अपने लिए स्वर्गिक सुखों की एक नई दुनियाँ तैयार कर लें; पर, क्या वे कभी यह भी विचार करते हैं कि जिनकी हम कामना कर रहे हैं, जिन वस्तुओं के लिए हमारा मन ललच रहा है; उन्हें पाने के लिए कुछ दूसरे प्रकार के उन गुणों और शक्तियों की आवश्यकता होती है, जिनको हमने अपनी अज्ञानता से नष्ट कर दिया है और इस समय भी बराबर उसका हवन करते जा रहे हैं। यद्यपि वे इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि उनका पथ बुरा है—उनके आचरण से उन्हीं के शरीर की शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो रही हैं, पर वे अपनी अज्ञानता को नहीं छोड़ते; अपनी काम-पिशाची प्रवृत्ति से अलग नहीं होते। इसी से आज संसार दुखी है। संसार में बसने वाले प्रत्येक प्राणी का हृदय सुख और शक्ति के अभाव में कराह रहा है!

संसार के उदर में, इस समय जिस विषैले कीड़े का जहर अपना विनाशक प्रभाव दिखा रहा है और जिससे वह अधिक पीड़ित और जर्जर होता जा रहा है; वह है पाप और विषय-वासना का कीड़ा! संसार का प्रत्येक देश आज इस कीड़े से दुखी है। ऐसा कोई भी देश नहीं, जिसकी शानदार सभ्यता के भीतर पाप का बाजार गर्म न हो; विषयवासना की भयंकर लपटों में राष्ट्रीय शक्तियों का हवन न होता हो। बच्चे-बच्चे तक इसके फन्दे में फँस गये हैं! कुमारी बालिकाएँ भी उससे अपना पिंड नहीं छुड़ा सकी हैं। ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जिस दिन अखबारों के द्वारा ऐसी घटनाएँ आँखों के सामने न आती हों। दिल काँप उठता है—आत्मा सिहर जाती है और साथही संसार और मानव-जीवन के मूल उद्देश्यों को समझकर इस संसार के मनुष्यों से घृणा भी होने लगती है। एक ओर संसार के सुख और शक्ति की इच्छा है; दूसरी ओर उसके कलुषित कारनामे। फिर क्या यह सम्भव है कि संसार अपनी इच्छाओं की अन्तिम मंजिल तक पहुँच सकेगा? नहीं, कोई अपनी वास्तविक शक्ति को बर्बाद कर सच्चे सुखों को कैसे प्राप्त कर सकता है? सुखों की प्राप्ति के लिए तो शक्तियों का होना अनिवार्य-सा है।

अन्यान्य राष्ट्रों की भांति ही हमारा देश भी आज छिन्न-भिन्न हो रहा है। हमारे देश के अन्दर भी वासना का जहरीला कीड़ा अपना विष घोल रहा है। चारों ओर पाप की विभीषिकाएँ दौड़

रही हैं। लोग अपने मानवी कर्तव्यों को भूलकर बिजली की भांति पाप की ओर दौड़ रहे हैं। अप्राकृतिक व्यभिचार, काल की तरह लम्बा मुँह फैलाकर, छोटे-छोटे सुकुमार बच्चों तक को हड़प रहा है। कोई वर्ग इस अनुचित पाप के सिकंजे से बचा नहीं है—सभी के हाथों में उसकी मजबूत जंजीरें पड़ी हुई हैं! पर इसका क्या कारण है? क्या उस समय भी, जब देश की गोदी में अर्जुन और भीम ऐसे महाबली, कृष्ण और राम ऐसे धर्म-प्रेमी दिखाई देते थे, यही पाप की लहर चारों ओर दौड़ रही थी? इसी पाप की भयंकर मनोवृति ने सबको दबोच रक्खा था? नहीं, उस समय धर्म का राज्य था—सत्य की दुनिया थी और उसको मजबूत करने के लिए सत् शिक्षा का व्यापक प्रभाव सबके दिलों में अपना अलौकिक दृश्य दिखा रहा था। सब जानते थे—मानव और संसार क्या है? संसार में मानव-जीवन किस प्रकार अपने गुणों और शक्तियों का विकास कर सकता हैं। कौटुम्बिक जीवन के सूक्ष्म रहस्यों को भी जानना उनके लिए धर्म की बात थी। पिता अपने पद को जानता था और माता अपने महत्त्व को। सन्तान पैदा कर देना ही केवल उनका उद्देश्य नहीं था। सन्तान पैदा करने के पहिले, माता-पिता दोनों अपने हृदय में ऐसी शक्तियों का संचय कर लेते थे—जिनसे बालक का विकास होता था; जिनसे वह अर्जुन और भीम-सा बहादुर बनकर सारे संसार को हिला देने वाला अनुपम सामर्थ्य-

वान बनता था ! इसीसे—केवल इसी मानवी नीति के पालन से—भारत के माध्यमिक युग का वह इतिहास, संसार में पूज्य है, आदरणीय है।

किन्तु आज उसी भारत के ऊपर कुशिक्षा का प्रकोप है। उसकी वह सभ्यता और शिक्षा उसके बीच से उठ गई है। उसके गुरुकुल और ऋषिकुल, जिन में विद्यार्थी कुश की साथरी बिछाकर अपना तपोमय जीवन बिताते थे, अब कहीं देखने को भी नहीं मिलते ! अब तो कालेजों और स्कूलों की शानदार कोठियाँ अवश्य दिखाई देती हैं। उनमें विद्यार्थियों के पढ़ने के लिए वे मनोमुग्धकारी सामग्रियाँ भी रहती हैं, जिनका ऋषिकुल के उन तपस्वियों को दर्शन भी नहीं होता था। पर उस गरीबी और इस अमीरी में कितना अन्तर है! उन खुरुहरी चटाइयों और इन चमकती हुई कुर्सियों में कितना अन्तर है ! क्या यह सत्य नहीं है कि वे अपनी गोद में एक ऐसा लाल पालती थीं, जिसकी ज्योति से सारा देश जगमगा उठता था और ये ऐसा एक कंकड़ पाल रही हैं, जिन्हें देखकर राष्ट्र की माता रो रही है—विलाप कर रही है !!

सचमुच देश की इस भीषण परिस्थति की सारी जिम्मेदारी आधुनिक शिक्षा पर है। स्कूल और कालेजों की पुस्तकें जहाँ प्रेम और वियोग की कहानियों से भरी पड़ी रहती हैं, वहाँ उनमें सदाचार और ब्रह्मचर्य के शायद ही दो एक पाठ रहते हों ! उन्हें यह

बताया ही नहीं जाता कि ब्रह्मचर्य क्या है? इससे मानव-जीवन का कितना और किस प्रकार-विकास हो सकता है। केवल इसी अज्ञा-नता के कारण बड़े-बड़े शिक्षित नवयुवक आज अशिक्षा के अन्ध-कार में पड़े हुए हैं! कामोत्तेजक और विलासी वस्तुओं के दास-बनकर वे अपने शारीरिक शक्तियों का अपव्यय कर रहे हैं। उन्हें मालूम नहीं कि शरीर की भित्ति को स्थायी रखने वाली नींव को हम अपने ही हाथों से गिरा रहे हैं! वे तो सोचते हैं, हमारी सोडा-वाटर की बोतलें, ब्रुश और कंघियाँ ही हमारे जीवन के लिए पर्याप्त हैं। इन्हीं के द्वारा हम अपने जीवन को टिका सकेंगे और बहुत दिनों से आशा की राह पर प्रतीक्षा करने वाले माता-पिता के अरमानों को भी पूरा कर सकेंगे। कितनी गलत धारणा है! पर इस में उनका क्या दोष? उन्हें यही बताया गया है—उन्हें यही सिखाया गया है। फिर वे कैसे अपने को उन्नति पर ला सकते हैं; कैसे राष्ट्र की आशा और आकांक्षा बनकर अपनी मातृभूमि की आँखों के सामने जा सकते हैं!!

प्रायः माता-पिता की भी यही अवस्था होती है। वे कभी भूल-कर स्वप्न में भी यह विचार अपने दिल में नहीं लाते कि हमारा बेटा देश की चीज है; उसके हृदय में ऐसी शक्तियाँ आनी चाहिये जिन से हमारे साथ ही साथ राष्ट्र का भी कल्याण हो! वह किस प्रकार सत्य और धर्म का गहरा प्रेमी बनकर संसार में अपनी मर्यादा स्थापित कर सकेगा? किस तरह उसका शरीर संयमी बनकर

रोगों से छुटकारा पा सकेगा ? किस प्रकार ब्रह्मचर्य और सदाचार की मनोहर शिक्षाएँ उसके हृदय में कूट-कूट कर भरी जा सकेंगी ? किस तरह वह राष्ट्र का प्रेमी बनकर अपनी सभ्यता और भाषा से प्रेम कर सकेगा ? वे तो सोचते हैं, हमारा बेटा जल्दी से जल्दी कालेज की ऊँची डिगरियाँ प्राप्तकर किसी सम्माननीय पद पर नियुक्त हो जाय। उनके लिए पुत्र-शास्त्र का यही तन्त्र है, यही मंत्र है। वे इसी के लिए प्रयत्न करते हैं। यदि इसके लिए उन्हें अधर्म की राह पर चलना पड़े, तो भी वे उसकी परवाह नहीं करते। वे केवल अपनी इसी छोटी कामना की सिद्धि के लिए सुकुमार मति बालकों को ऐसे वातावरण में डाल देते हैं, जो उनके जीवन के लिए अत्यन्त विषैला और कंटकमय होता है। जब माता-पिता और शिक्षक ही बच्चों को अज्ञानता के कुएँ में ढकेलते हैं; जहाँ वे ही उनके सदाचार और संयम-पूर्ण जीवन की उपेक्षा करते हैं, तो वे कैसे पूर्ण पंडित बनकर संसार के सामने आ सकते हैं ? कैसे संयमी और ब्रह्मचारी बनकर अपनी शक्तियों से संसार को चमत्कृत कर सकते हैं ? कैसे राष्ट्र के चारों ओर घूमने वाली विपत्तियों का सामना कर उसे दुख के सिकंजे से छुड़ा सकते हैं ? माता-पिता ही तो बालकों के सर्वस्व हैं ! वही तो उनके विधाता और जीवन-निर्माता हैं। जब वही उन्हें अन्धकार में झोंकते हैं तो वे क्यों न गिरें, जब वही उन्हें अर्थों का दास बनाते हैं तो वे क्यों न बनें; किन्तु उनकी यह

मनोवृत्ति राष्ट्र, समाज और अपने लिए भी क्या घातक नहीं है? क्या इससे उनकी भी आशाएँ पूरी होती हैं? क्या उनके बुढ़ापे का वह आश्रयदाता, सचमुच सहारा बनकर उनके हाथों की लकड़ी बन पाता है? नहीं, वह कुछ नहीं कर पाता। धार्मिक और मानवी शिक्षा के पूर्ण अभाव में वह निर्जीव बन जाता है। और दूसरों की कौन कहे, अपनी ही सहायता के लिए संसार में दर-दर हाथ फैलाता हुआ फिरता है।

एक नहीं, हजारों-लाखों नवयुवक आज भारत के बड़े-बड़े शहरों की गलियों में फिरते हुए नजर आ रहे हैं, जो अपने माता-पिता की अज्ञानता से ही अपना सब कुछ बर्बाद कर चुके हैं, जिनके चेहरे पर तेज और शरीर में शक्ति नहीं है, जो विलास और वासना को अपनी सहचरी बनाकर जीवन-तत्त्वों से भिखारी बन चुके हैं। वे अकेले ही नहीं हैं, उनके पीछे उनके माता-पिता की आशाएँ हैं, उनके कुटुम्ब की अभिलाषाएँ हैं! और वे तो अपनी ही सहायता करने में असमर्थ हैं। उनके शरीर में इतनी भी शक्तियाँ शेष नहीं रह गई हैं, जो वे संसार के मैदान में दौड़-धूपकर अपना तथा अपने पीछे चलने वाले परिवार का भरण-पोषण कर सकें। संसार में शक्ति ही तो सब कुछ है। जिसमें शक्ति है, जिसके हृदय में साहस और बल है, वही तो संसार का राजा है। संसार में सम्पत्ति और सुख की कमी नहीं; कमी है तो साहस और शक्ति की! सम्पत्ति तो साहस और शक्ति के

पीछे-पीछे दौड़ती है। जिसने अपनी सम्पत्ति को लुटा करके भी अपनी शक्ति की रक्षा की है, वह दरिद्र होते हुए भी सुखी है, वह निर्धन होते हुए भी धनवान है। उसे संसार की भयंकर अवस्थाएँ भी अपने मार्ग से विचलित नहीं कर सकतीं। वह अपने मार्ग पर सिंह की तरह दहाड़ता हुआ बराबर आगे बढ़ता ही जायगा। इसलिए संसार में बसने वाले प्रत्येक प्राणी को अपनी शक्ति की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

संसार में शरीर की शक्ति ही अत्यन्त श्रेष्ठ शक्ति है। जिस मनुष्य के पास शारीरिक शक्ति है, वह इस रत्नमय संसार में कभी भी दुख नहीं उठा सकता। यदि किसी के घर में अतुल भंडार भरा हुआ हो और वह रोगी तथा शक्तिहीन हो, तो वह भंडार उसके किस काम का? वह तो उसके लिए उस अन्धे पुरुष के समान है, जो इच्छा रहने पर भी किसी चीज के पाने में लाचार रहता है; किन्तु फिर भी लोग इस ओर ध्यान नहीं देते हैं और वासना की भयंकर अग्नि में अपनी शारीरिक शक्तियों को बराबर झोंका करते हैं। वे यह ख्याल नहीं करते कि जिन प्राणों के सुखों के लिए हम अपनी शक्तियों का विनाश कर रहे हैं, वे ही हमें बूढ़ा और हमारे शरीर को जीर्ण-शीर्ण जानकर अपने घोंसलें से उड़ जायँगे। कारण, इन शक्तियों ही से जीवन टिका है। यदि शक्तियाँ न रहेगीं तो जीवन भी न रहेगा। वह भी सड़-कर संसार से बिदा हो जायगा। किन्तु इस ओर कौन ध्यान

देता है ? कौन शरीर-विज्ञान की इन बारीकियों को समझने की चेष्टा करता है ? यद्यपि हमारा धर्म-शास्त्र, हमारी धार्मिक पुस्तकें इन बातों से भरी हुई पड़ी हैं ! हमारे पूर्वजों ने हमारे लिए उनमें ज्ञान का मार्ग भी दिखला दिया है; किन्तु अशिक्षा और कुशिक्षा के प्रभाव से हम उन बातों पर ध्यान नहीं देते और न उनसे किसी प्रकार का ज्ञान ही प्राप्त करते हैं। यदि हम उन पर ध्यान देने लगें; उनके बताये हुए शरीर-विज्ञान विषयक नियमों के अनुसार कार्य करने लगें तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारी दुर्दशा के बादल हमारे भाग्याकाश से अलग हो जायँ। भगवान श्रीकृष्ण ने क्या ही अच्छा कहा है कि यदि संसार में ज्ञान का आलोक फैल जाय तो संसार के सम्पूर्ण असत् कार्य अपने-आप विनष्ट हो जायँ। देखिये:—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा॥ —गीता

वास्तव में ज्ञान ही संसार में सब कुछ है। ज्ञानहीन मनुष्य संसार में निःसार सा मालूम होता है। मनुष्य होकर यदि ज्ञान से शून्य हुआ तो उसमें और पशुओं में कोई अन्तर नहीं रह जाता। पशु भी जीव है। किन्तु उसमें ज्ञान नहीं—बोलने की शक्ति नहीं, इसीलिए संसार में उपयोगी होते हुए भी वह अनुपयोगी के नाम से पुकारा जाता है। किन्तु मानव-जीवन का यह उद्देश्य नहीं। उसका संसार में अस्तित्व है। कहना चाहिये, उसी से

संसार का विकास और विभास होता है। इसीलिए उसे ज्ञानी होना अत्यन्त आवश्यक है। उसे एक आविष्कारक की भांति ज्ञान के अन्तराल तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिये। धर्म-शास्त्रों से, प्राचीन पुस्तकों और आदर्श ग्रन्थों तथा उपदेशकों द्वारा वह भली भाँति अपने आवश्यक ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। पर हम इससे भी वंचित हैं? सदियों की गुलामी के कारण हमारे हृदय से अपनी संस्कृति का अभिमान उठ गया है। आज प्राचीन ऋषियों के वाक्य हमें थोथे और निःसार मालूम होते हैं। हम रोगी होने पर किसी विदेशी डाक्टर की सलाह मान कर झट कुनैन की गोली खाने और मदिरा तक पान करने के लिए तैयार हो जाते हैं; किन्तु भारतीय आरोग्य-शास्त्रानुसार उसी रोग के लिए एक अधेले की दवा करना अपनी हीनता समझते हैं। यद्यपि वह उससे अच्छी है; किन्तु उस पर से हमारा विश्वास उठ गया है। इसलिए धर्म-शास्त्र और प्राचीन वैद्यक-शास्त्र तो हमारे दिमाग से दूर हो गये हैं। अब रह गई उप-देशकों की बात! उपदेशक भी प्रायः ज्ञान से शून्य ही होते हैं। वे आज कुछ कहते हैं तो कल ठीक उसके विपरीत।

फिर हमारा क्या कर्त्तव्य है? जब हम हर एक ओर से ज्ञान प्राप्त करने में निरुपाय हो गए हैं तो क्या इसी प्रकार हमें अपनी मानवी-शक्तियों को विनष्ट करना चाहिये, इसी प्रकार व्यभिचार और असंयम की भावना में पड़कर अपने को बर्बाद करना

चाहिये ? नहीं, हम मनुष्य हैं। मानवी कर्त्तव्य हमारे पीछे लगा हुआ है। भगवान ने मनुष्य होने के नाते हमें ज्ञान की अतुल सम्पत्ति प्रदान की है। वह हमसे नहीं विलग हो सकती— वह ईश्वर की दी हुई वस्तु है। यदि हम तनिक स्थिरता से सोचें और विचार से काम लें तो हमारी आँखों के सामने, सहज ही हमारे कर्त्तव्य नाचने लगेंगे, जिनसे मानव-जाति का विकास और उपकार हो सकता है। उनके अनुसार कार्य करने से न हमारे जीवन का शीघ्र विनाश होगा और न संसार हमारी हँसी ही कर सकेगा। किसी भारतीय विद्वान ने कहा है—"कि हमारे शरीर में विवेकरूपी श्रीकृष्ण, प्रवृत्ति और निवृत्ति नाम के चंचल घोड़ों की बागडोर मजबूती से पकड़े हुए, प्रतिदिन उदासीन और दुखी अर्जुन रूपी मनको गीता का उपदेश सुनाया करते हैं।" कितनी सुन्दर और सच्ची कल्पना है ! इसमें सन्देह नहीं कि हमारा मन ज्ञान का भंडार है। यदि हम विचार से काम लें तो हमारा ज्ञानमय मन ही हमें पाप-पथ पर जाने से रोकेगा—वर्जित करेगा।

प्रत्येक मनुष्य को ज्ञान का सहारा लेना चाहिये। ज्ञान ही उसका उपदेशक और नेता है। पर ज्ञानरूपी नेता को प्रगट करने के लिए, विश्वास की आवश्यकता होती है। बिना विश्वास के सच्चा ज्ञान कभी प्रकट नहीं होता। इसके लिए ईश्वर का एक उदाहरण ही प्रर्याप्त है। ईश्वर अलक्ष्य है। उसे किसी ने देखा नहीं ; किन्तु केवल एक विश्वास है। इसीलिए कहा जाता

है कि मन में ज्ञान को जगाने के पहिले सारे संशयों को दूर कर देना चाहिये। संशय के दूर होने के साथ-ही-साथ ज्ञान अपने आप जग जायगा। यदि हम मनुष्य हैं, तो हमें अपने इस प्राकृतिक ढंग से ज्ञान को जगाने का उसी तरह अवश्य प्रयत्न करना चाहिये, जिस भाँति शरीर की रक्षा के लिए अन्न अत्यन्त आवश्यक है। यदि हमारे ज्ञानरूपी सारथी ने हमारे मन रूपी घोड़े को अच्छी तरह पकड़ रक्खा है तो वह कभी व्यभिचार और पाप की ओर अग्रसर नहीं हो सकता। उसके सदाचार के चाबुक हमें सदैव विवश किये रहेंगे। फिर उस समय हमारे जीवन का अस्तित्व पाप में न जल सकेगा; हमारे शरीर की शक्तियाँ जवानी में ही हमें छोड़कर न चली जायँगी; हम दुनिया में कुछ काम कर सकेंगे और संसार मरने पर उसके लिए हमारा ऋणी रहेगा।

प्राचीन काल में, भारत की इसी पवित्र भूमि में ऐसे अनेकों लोग मौजूद थे, जिन्होंने शरीर की अवस्थाओं को भी अपने वश में कर लिया था; मृत्यु के ऊपर भी विजय प्राप्त कर लिया था। यही नहीं, जिन्होंने अपने अखण्ड प्रताप से सारे संसार तक को चमत्कृत कर दिया था। पर इसका क्या कारण था ? वे भी तो आदमी थे ! हमारी ही भाँति उनके भी तो दो पैर और दो हाथ थे; किन्तु वे हमारी तरह अज्ञान न थे। उनकी मानसिक शक्तियाँ, अशिक्षा और अन्धभावना के अन्धकार में नहीं पड़ी थीं। उन्होंने

अपने प्राकृतिक ज्ञान को जगाकर अपने हृदय में मानवी-शक्तियों का संचय कर लिया था। उनका ब्रह्मचर्य-बल इतना बढ़ा चढ़ा हुआ था कि उसके प्रताप से लोग काँप जाते थे। मानव-शरीर में ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-धारण ही एक अद्भुत बल है। यही उसका तेज है, यही उसका अस्तित्व है। जिसने ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करके अपने को शक्तिमान बना लिया, उसके लिए संसार में किसी दूसरी शक्ति की आवश्यकता नहीं। वह अपनी केवल इसी एक शक्ति से सारे संसार को हिला सकता है! महाभारत के वीर-पुंगव बाल-ब्रह्मचारी भीष्म का नाम अभी किसी को भूला न होगा; वीर-केसरी हनूमान का नाम अभी लोगों की जबान ही पर होगा। इन दोनों महावीरों ने अपने इसी ब्रह्मचर्य-शक्ति से समर में बड़े-बड़े वीरों तक के हृदय को दहला दिया था! स्वयं भगवान कृष्ण को भीष्म और श्रीरामचन्द्र को हनूमान की वीरता पर आश्चर्य करना पड़ा था। पर आज ब्रह्मचर्य की वह शक्ति भारत से लुप्त हो गई है। अनेक सदियों से अब भीष्म और हनूमान-जैसा कोई वीर नहीं दिखाई देता। बल्कि इसके प्रतिकूल लोग कायर और डरपोक होते जा रहे हैं। नौजवान अपनी युवावस्था और बालक अपनी बाल्यावस्था ही में निस्तेज और साहस शून्य दिखाई देते हैं। विद्यार्थी-समाज अलग अप्राकृतिक व्यभिचारों का शिकार बनकर अपने को अग्नि-कुण्ड में झोंकता जा रहा है। ब्रह्मचर्य का वह स्वर्गिक

तेज किसी की आकृति पर दृष्टिगोचर नहीं होता। कोई क्षय-रोग से पीड़ित है तो कोई तपेदिक से। किसी का शरीर वीर्य के अभाव में खोखला हो गया है तो कोई अप्राकृतिक मैथुन के दोषों का शिकार बन चारपाई पर पड़ा-पड़ा जीवन की घड़ियाँ गिन रहा है। किन्तु इसके प्रतीकार का कोई उपाय नहीं; इसके विरोध की किसी में शक्ति नहीं।

राज्ययक्ष्मा और क्षय रोग का तो आज घर-घर में निवास है। छोटे-छोटे बच्चे तक इसमें पकड़े हुए देखे जाते हैं। छोटी-छोटी बालिकाओं और कैशोर बालकों तक को तपेदिक के महा-रोग ने सता रक्खा है। ऐसा कोई पुरुष नहीं, जो क्षय रोग में आग्रस्त न हो। शरीर की सभी शक्तियाँ विनष्ट हो गई हैं। मानसिक शक्तियों का भी प्रायः लोप-सा हो गया है। किसी में ऐसी शक्ति नहीं कि कोई संसार के कल्याण के लिए किसी नई चीज का आविष्कार कर सके। जहाँ एक ओर पतन के चिह्न दृष्टिगोचर हो रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर एक समाज कुछ जाग भी चला है। वह इसके विरोध में आन्दोलन भी करने लगा है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय के आलोचना-पूर्ण लेख भी लिखे जाने लगे हैं। किन्तु उसमें भी पाश्चात्य सभ्यता की बू है—वे उसीके अनुसार भारतीय युवकों का भी सुधार करना चाहते हैं। किन्तु यह भारत के लिए हितकर नहीं—भारत ऐसे धार्मिक देश को पाश्चात्य-जगत् का आदर्श ऊँचा नहीं उठा सकता! इसके

लिए भारत का वह प्राचीन वैदिक-आदर्श ही सर्वोत्तम है, जिसने एक समय सारे संसार में अपना डंका बजा दिया था।

एक युग वह था, जब भारत के विद्यार्थी-समाज ने अपने ज्ञान की शक्तियों से सारे संसार को अचम्भे में डाल दिया था। आज भी विद्यार्थी-युवकों को आगे बढ़ने की आवश्यकता है। आज भी उनके शरीर के अन्दर ब्रह्मचर्य का अखण्ड तेज होना चाहिये। किन्तु ब्रह्मचर्य-पालन तो उन युनिवर्सिटियों और कालेजों के विद्यार्थियों से नहीं हो सकता, जहाँ लड़के-लड़कियाँ एक साथ बैठ कर पढ़ा करते हैं। इसके लिए तो प्राचीन ऋषि-कुल और गुरु-कुल ही आदर्श स्वरूप हैं, जहाँ किसी समय विद्यार्थी कुश की चटाई पर बैठकर विद्याध्ययन करते थे। किन्तु उन आदर्श विद्यालयों का निर्माण अभी हो नहीं सकता। उसके लिए समय की आवश्यकता है। किन्तु यह तो सुधार का दूसरा प्रश्न है। पहला सवाल प्रत्येक माता-पिता कहलानेवाले मनुष्य के सामने है। वह उसे स्वयं हल कर सकता है। वह सवाल कोई दूसरा सवाल नहीं, अपने हाथों अपने बालकों का सुधार करना है। माता-पिता का प्रथम कर्त्तव्य है कि वे बालकों को उचित मार्ग पर लावें। उनके हृदय में सदाचार और सत्य की ऐसी शिक्षाएँ भरें जिनसे उनके जीवन का विकास हो। बालक कभी बुरी संगति वाले लड़कों के साथ न बैठने पावें; विलासी और शौकीन लोगों के साथ से वे दूर ही रक्खे जायँ। सादगी उनके जीवन

का प्रथम उद्देश्य होना चाहिये। सायं सवेरे भगवान की प्रार्थना करना उनके लिए अत्यन्त आवश्यक है। गीतें भी वे ऐसी ही गावें, जिनसे उनके मन में विकार न पदा हो। विद्याध्ययन के लिए वे किसी सदाचारी और त्यागी अध्यापक के ही हाथों में सुपुर्द किये जायँ। बालकों की भोजन सामग्रियों पर भी माता-पिता को ध्यान देना चाहिये। इस में सन्देह नहीं कि माता-पिता बालकों के दैनिक-कार्यों पर दृष्टिपात करें और उन्हें दुर्गुणों से बचाने की चिंता में प्रयत्नशील रहें तो बालक अपने प्राकृतिक विकास-गुण से सारे राष्ट्र की वह सम्पत्ति हो सकते हैं, जिस पर राष्ट्र गर्व करता है—अभिमान करता है !!

२—ब्रह्मचर्य क्या है ?

भारतवर्ष में ब्रह्मचर्य की महिमा अत्यन्त प्राचीन है। वह उन्नति का युग अभी आँखों के सामने से हटा नहीं है, जब भारत की आर्य-जाति ने एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक अपनी विजय का डंका बजा दिया था। वीरता, विद्वत्ता, धर्म-प्रियता, न्याय और सत्य-शीलता-जैसा कोई भी जीवनोपयोगी विषय नहीं बचा था, जिसमें आर्यों ने प्रसिद्धि—कीर्ति न प्राप्त की हो। यह सब किसका प्रताप था? ब्रह्मचर्य का! ब्रह्मचर्य से कोई भी जाति, कोई भी समाज और कोई भी राष्ट्र संसार में अपने को ऊँचा

उठा सकता है। ब्रह्मचर्य ही तो शक्ति का पिता है। वही समाज और राष्ट्र को अपनी गोद में लेकर उसका पालन करता है। जिस समाज में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं, वह कभी संसार में उन्नत नहीं हो सकता। भारतवर्ष इसका एक सच्चा उदाहरण है। आज भी वही भारतवर्ष है और उसका वही अन्न और वायु है। पर, अब भारतवर्ष में अर्जुन की भाँति वीर नहीं दिखाई देते; लक्ष्मण-जैसे त्यागी और वीर पुरुष दृष्टिपथ में नहीं आते! इसका क्या कारण है ? भारत के निवासियों ने अपने मूल व्रत—ब्रह्मचर्य को छोड़ दिया है। उनके शरीर से वीर्य की शक्तियाँ निकल गई हैं। उनके प्राचीन ऋषिकुल और गुरुकुल उजड़ गये हैं। विद्यार्थी, बाल्यावस्था ही में अप्राकृतिक मैथुनों द्वारा अपने को निस्तेज और उद्यमहीन बना रहे हैं। फिर कहाँ से अर्जुन और भीम का आविर्भाव होगा ? कहाँ से लक्ष्मण और भरत की सृष्टि होगी ? समाज के ये ही बच्चे तो लक्ष्मण और भरत बन सकते हैं। इन्हीं से तो अर्जुन होने की आशा की जा सकती है। किन्तु ये तो जर्जर, निस्तेज, कायर और असाहसी हैं; फिर इनसे राष्ट्र के कल्याण की आशा कैसी ?

मानव-शरीर में वीर्य ही प्रधान वस्तु है। इसीसे ब्रह्मचर्य की परिभाषा करते हुए शास्त्रकारों ने लिखा है:—"वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्"। अर्थात् वीर्य का धारण करना ही ब्रह्मचर्य है। 'वीर्य' शब्द से इसी प्रकार के और कई शाब्दिक अर्थ प्रगट होते हैं; जैसे—

शौर्य, तेज, उत्साह और साहस। वीर्य इन सबों का उत्पादक है। जिसने अपने शरीर में स्थित वीर्य को रोक रक्खा है; जिसके शरीर का वीर्य स्खलित और विकृत नहीं हुआ है; जिसने संयम से उसे अपने वश में कर लिया है; उसमें शक्ति, साहस और तेज के साथ ही अत्यन्त ज्ञान भी होता है। उसका मस्तिष्क सदैव फूल की तरह विहँसता रहता है; चित्त प्रकाश और शक्ति से जगमगाता-सा रहता है। संसार का कोई भी काम उसके लिए कठिन नहीं होता। वह अपने वीर्य की अद्भुत शक्ति से चारों ओर अपने लिए रास्ता साफ किये रहता है। रोग तो उसके पास आते ही नहीं। इस प्रकार वह अपने वीर्य का संचयकर संसार में सदा विजयी बना रहता है।

किन्तु वीर्य है क्या वस्तु? जिसकी सत्ता में संसार की सारी शक्तियाँ समाई हुई हैं और जो संसार को संसार का नाम देता है; वह है क्या चीज! कैसे और कहाँ पैदा होता है? इस संबंध में सुश्रुत ने लिखा है:—

रसात्प्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदसोऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः॥
शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलपुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भबीजं वपुःसारो जीवस्याश्रय उत्तमः॥
ओजस्य तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्।
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति निबन्धनम्॥

रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र की उत्पत्ति होती है। शुक्र का रंग सफेद और स्निग्ध होता है। वह गर्भ का बीज-स्वरूप, शरीर का सार और जीव के जीवन का प्रधान आश्रय है। रस से शुक्र तक सात धातुओं के तेज को ओज कहते हैं। यद्यपि इसका केन्द्र हृदय ही है; किन्तु यह समस्त शरीर में फैलकर उसकी रक्षा करता है।

शुक्र ही शरीर में प्रधान वस्तु है। यही तेज का पुंज और शक्ति का भंडार है। जब तक शरीर में शुक्र रहेगा, तब तक उसमें शक्ति और ओज रहेगा। शुक्र के विनष्ट हो जाने पर ओज अपने आप नष्ट हो जायगा। ओज को ब्रह्मतेज के नाम से भी पुकारा गया है। पाश्चात्य विद्वानों ने इसी को 'ह्यूमन मैग्निटिज्म' के नाम से सम्बोधित किया है। उनका भी कथन है कि केवल इसी पदार्थ से सम्पूर्ण शरीर की रक्षा होती है। जब शरीर में इसकी कमी हो जाती है या हमारी अज्ञानता से वह झुलस जाता है तो शरीर सूखे काठ की तरह नीरस हो जाता है; न उसमें सौन्दर्य रह जाता है और न शक्ति। ऊपर से अनेक रोगों का आक्रमण आरंभ हो जाता है। संसार के किसी काम में मन नहीं लगता। चित्त सदा उदासीन और आलसी-जैसा बना रहता है। भाई-बन्धु, माता-पिता सभी तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगते हैं। इसीलिए एक जर्मन डाक्टर ने अपनी

एक पुस्तक में लिखा है—संसार एक समरभूमि है। मनुष्य उसमें संसार की परिस्थितियों के साथ लड़ने के लिए भेजा जाता है। यदि उसके शरीर में शक्ति रहती है; यदि उसका हृदय तेज और ओज से भरा रहता है तो वह उन पर विजय प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के शरीर में शक्ति ब्रह्मचर्य से आती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को वीर्य-रक्षा करके ब्रह्मचारी बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

प्राचीन काल में, भारतवर्ष में ब्रह्मचारी बनने के अत्यन्त प्रबल साधन थे। बालकों को भी ब्रह्मचारी बनने की शिक्षा दी जाती थी। वे नौ वर्ष के पश्चात् ही गुरुकुल में भेज दिये जाते थे और वहाँ अपनी पच्चीस-छब्बीस वर्ष की अवस्था तक रहते थे। इतनी उम्र में, एक बार भी उनके शरीर का वीर्य स्खलित नहीं हो पाता था। वे पूरे ब्रह्मचारी रहते थे। इसके बाद पूर्ण पंडित बनकर वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। इनसे जो सन्तान पैदा होती थी, वह अत्यन्त बली और बहादुर होती थी।

परन्तु आज तो जमाना ही दूसरा है। चारों ओर कुशिक्षा और मूर्खता का बाजार गर्म है। विद्यार्थी अपने अध्ययन-काल ही में अपने शरीर के वीर्य को पानी की भाँति बहा देते हैं। अनेक दुर्गुणों के शिकार बनकर वे अपने को बर्बाद कर डालते हैं। जब वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, तब उनका शरीर निर्जीव, मुख कुम्हलाया हुआ और वीर्य-कोष बिलकुल खाली-

सा रहता है। फिर उनकी पैदा की हुई सन्तान क्यों न निर्बल होगी ? क्यों न वह थोड़े ही दिनों में रोगों का शिकार बनकर काल के गाल में चली जायगी ? सन्तान तो माता-पिता का दूसरा स्वरूप होती है। जब माता-पिता ही निर्बल हैं, तब सन्तान कहाँ से बलिष्ठ होगी ? बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिए ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है—संयम से वीर्य-धारण करने की जरूरत है। वीर्य से सन्तान की उत्पत्ति होती है; उसी में उस भावी जीव का सारा अंश समाविष्ट रहता है। यदि वीर्य बलिष्ठ होता है; यदि उसके जीवाणु हमारी अज्ञानता से नष्ट नहीं हो गये हैं तो सन्तान अवश्य बलिष्ठ होगी। उसमें अवश्य वैसी ही शक्तियाँ होंगी जैसी एक दिन भारतीय बालकों में हुआ करती थीं। इसलिए प्रत्येक सन्तान-इच्छुक गृहस्थ को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिये। और अपने बालकों को भी ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी तथा दिलानी चाहिये।

ब्रह्मचर्य से केवल बलिष्ठ सन्तान का निर्माण ही नहीं होता; वरन् उससे जीवन को मुक्ति भी मिलती है। कारण शास्त्रकारों ने लिखा है कि—

न तपस्तपइत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
ऊर्द्धरेता भवेद् यस्त स देवो न तु मानुषः॥

ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य-धारण ही संसार में सबसे अच्छी तपस्या है। इस तपस्या में जिन्होंने पूर्णसिद्धि प्राप्त कर ली है,

वे मनुष्य-रूप में देवता हैं। उन्होंने मृत्यु को भी अपने वश में कर लिया है। संसार की सारी वस्तुएँ उनकी इच्छा के आधीन हैं। वे बड़े-बड़े अद्भुत कार्यों को भी थोड़े ही समय में कर डालने की क्षमता रखते हैं। यही कारण है कि परशुराम, हनूमान और भीष्म ने अपने पराक्रम से सारे संसार को हिला दिया था! हनूमान् ने पर्वत को लाकर राम के सामने रख दिया था! यह सब ब्रह्मचर्य का ही अद्भुत प्रताप था। इसी के बल पर वे इन अद्भुत कार्यों को पूरा कर सके थे।

देशी और विदेशी विद्वानों के मत—

प्राचीन काल में, भारतीय विद्वानों ने ब्रह्मचर्य के ऊपर अनेकों ग्रंथ लिखे थे; किन्तु उनमें बहुत से अब अप्राप्य हैं। फिर भी संस्कृत के अवशेष ग्रंथों में ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा पाई जाती है। योगशास्त्र में लिखा है—

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।
तस्मादतिप्रयत्नेन कुरुते बिन्दुधारणम्॥

अर्थात् शुक्रपात मृत्यु और शुक्र-धारण करना ही जीवन है। अतएव योगियों को शुक्र-धारण का प्रयत्न करना चाहिये। आगे चलकर उसी में फिर लिखा गया है—

जायते म्रियते लोको बिन्दुना नात्र संशयः।
एतज् ज्ञात्वा सदा योगी बिन्दुधारणमाचरेत्॥

अर्थात् बिन्दु से ही जीवन की उत्पत्ति और उस का विनाश

होता है। इसलिए योगियों को यत्नपूर्वक उसका अनुष्ठान करना चाहिये।

ऋग्वेद में लिखा है—मनुष्य बिना ब्रह्मचर्य धारण किये कभी भी पूर्ण आयु वाला नहीं हो सकता। इसी प्रकार यजुर्वेद का भी निर्देश है कि चारों आश्रमों के यथाविधि कर्तव्य पालन के लिए ब्रह्मचर्याश्रम का पालन करना नितान्त आवश्यक है। भगवान शंकर ने कहा है—ब्रह्मचर्य सर्वोत्तम तप है। अखंड ब्रह्मचर्य-व्रत-व्रती पुरुष देवता कहलाता है। उसे मनुष्य समझना भूल है।

इसी प्रकार प्राचीन ऋषियों और विद्वानों के कुछ विचार इस तरह हैं—

"हे निष्पाप! ब्रह्मचर्य से ही संसार की विद्यमानता है। मूल आधार के नाश होने पर ही वस्तु का विनाश होता है; अन्यथा नहीं।"

—महर्षि वशिष्ठ

"देवता, मनुष्य और राक्षस सब के लिए ब्रह्मचर्य अमृतरूप है। मनुष्य की मनोभिलाषाएँ ब्रह्मचर्य की निष्ठा से ही पूर्ण हो सकती हैं।" —ब्रह्मा

"मुक्ति का दृढ़ सोपान ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्याश्रम के सुधार से सब क्रियाएँ पूर्ण और सफल हो जाती हैं।". —दक्ष

"ब्रह्मचर्य से मनुष्य दिव्यता को प्राप्त करता है। शरीर के त्यागने पर उसे मोक्ष मिलता है।" —गर्ग

"हे जीव! ब्रह्मचर्य रूपी सुधानिधि तेरे पास है। उसकी

प्रतिष्ठा से अमर बन ! निराश मत हो। ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन से मनुष्यता को सार्थक बनाने का उद्योग करो।" —श्रुति

जिस प्रकार हमारा संस्कृत-साहित्य ब्रह्मचर्य की महिमा से भरा पड़ा है उसी प्रकार विदेशी विद्वानों ने भी ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अनेकों सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। उन्होंने भी बड़े जोरदार शब्दों में मानव-समुदाय से अपील की है कि वे संयमी बनकर ब्रह्मचर्य के पुजारी बनें। यहाँ हम कुछ विदेशी विद्वानों की सम्मतियाँ दे रहे हैं—

अंग्रेज डाक्टर लुइस ने एक स्थान पर लिखा है—"संसार के सभी सुविज्ञ पंडितों ने एक मत से स्वीकार किया है कि शरीर का सार वीर्य है। और उसकी रक्षा के लिए प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचारी बनना अत्यन्त आवश्यक है। कारण विना ब्रह्मचर्य के मानव-शरीर की शक्तियाँ धूल में मिल जाती हैं और उनका किसी रूप में विकास नहीं हो पाता।" एक दूसरे डाक्टर ने जिसका नाम निकोलस है, लिखा है—"चिकित्सा और शरीर-विज्ञान-शास्त्र के द्वारा यह अच्छी तरह प्रमाणित हो गया है कि मनुष्यों के शरीर की वह शक्ति जिसके बलपर उनका जीवन टिका रहता है; उन्हीं के रक्त से तैयार होती है। जिसका जीवन पवित्र है; जिसने व्यभिचार की अग्नि में अपने को डालकर झुलसा नहीं दिया है; उसके शरीर का रक्त पवित्र रहकर गुण युक्त वीर्य का निर्माण करता है। उसका मस्तिष्क प्रसन्न, मांसपेशियाँ बलिष्ठ और

हृदय हर्षोत्फुल्ल रहता है। कारण, मनुष्य के शरीर का सर्वोत्तम शुक्र ही उसको उद्यमशील, तेजस्वी, साहसी और मेधावी बनाता है। और इसके प्रतिकूल विदूषित शुक्र मनुष्य को निर्बल, असाहसी और कायर बनाता है; जिससे उसकी बुद्धि चंचल और अस्थिर होती है। संसार के किसी भी काम में उसका मन नहीं लगता। यही नहीं, बल्कि वीर्य को पानी की तरह बहानेवाले के शरीर का भी विनाश शीघ्र हो जाता है। आयु भी धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है। आँखें नीली-पीली हो जाती हैं। देखने की शक्ति भी जाती रहती है। इन्द्रियाँ विकृत और शिथिल पड़ जाती हैं। अनेकों प्रकार के भयङ्कर रोग जीवन के चारों ओर घूमने लगते हैं। वैद्यों और डाक्टरों की शरण में जाने पर भी रोगों से पिंड नहीं छूटता। जीवन भार-जैसा हो जाता है। अन्त में बड़ी कठिन और रोमाञ्चकारी विपत्तियों का सामना करने के बाद असमय में ही उस अभागे का महाविनाश हो जाता है।"

इसी प्रकार संसार के सभी विद्वानों ने मानव-जगत् से ब्रह्मचर्य की अपील की है। सभी समझदार व्यक्तियों ने यह बताया है कि जीवन-रक्षा के लिए वीर्य-रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। बिना ब्रह्मचर्य के वीर्य-रक्षा हो नहीं सकती। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन अवश्य करना चाहिये। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही जीवन और जीवन ही ब्रह्मचर्य है—ऐसा सब आचार्यों की सम्मति है।

नियम-पालन—

हिन्दू-शास्त्रानुसार मानव-जीवन चार भागों में विभक्त है। ये भाग प्रचलित भाषा में आश्रम के नाम से पुकारे जाते हैं। इन चारों आश्रमों के नाम यह हैं—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। इन चारों अवस्थाओं में ब्रह्मचर्य की अवस्था ही अत्यन्त उत्तम और उपयोगी है। केवल इसी एक अवस्था के ऊपर अन्य तीनों अवस्थाएँ निर्भर करती हैं। जो पुरुष सर्वप्रथम ब्रह्मचर्य के पथ पर चलकर अपने हृदय में शक्ति का पुंज भर लेता है, वह दूसरी अन्य तीन अवस्थाओं में कभी पराजय की चोट नहीं खाता। कारण ब्रह्मचर्य से शरीर और आयु की पुष्टि होती है। गृहस्थाश्रम के लिए इन शक्तियों का होना अनिवार्य-सा है। अतएव जो मनुष्य किसी भी अवस्था में सदाचार-मय जीवन बिताना चाहते हैं; जो आध्यात्मिक तथा शारीरिक उन्नति के द्वारा अपने कल्याण के साथ ही साथ संसार का भी कल्याण करना चाहते हैं; उन्हें ब्रह्मचर्य-मंत्र का अवश्य जाप करना चाहिये। अपने विद्यार्थी-सन्तानों को भी ब्रह्मचर्य के अवलम्बन के लिए तैयार करना चाहिये। यहाँ हम उन नियमों का व्याख्या-पूर्वक उल्लेख कर रहे हैं जिनके पालन से ब्रह्मचर्य की साधना भलीभाँति सम्पादित हो सकती है।

सवेरे के काम

सूर्योदय के पहिले अपनी चारपाई छोड़ देनी चाहिये। पश्चात्

शीतल जल के छींटों से अपने मुख और आँखों को भली प्रकार धो लो। मल-मूत्र का परित्याग करो। मिट्टी या जल से हाथ तथा शौच-पात्र को साफ करो। शौच के वस्त्र को बदलकर दूसरा कपड़ा पहन लो। हाथ और पैर को अच्छी तरह धो डालो। फिर मुख-मञ्जन करने की तैयारी करो। इसके लिए आजकल शहरों में अनेकों प्रकार के सुगन्धित और उपयोगी मञ्जन बिकते हैं। पर, वे सबको नहीं मिल सकते। इसलिए दन्त-धोवन के लिए दाँतुन ही अत्यन्त उपयोगी है। इसका प्रयोग भी प्रत्येक श्रेणी के मनुष्य कर सकते हैं। दाँतुन नीम या बबूल की हो। दाँतुन करते समय मुख का पानी जमीन पर ही गिरने देना चाहिये। यदि दाँतुन करने के पहले थोड़ा-सा सरसों का तेल और महीन नमक दाँतों में मल लें तो अत्यन्त उपकारी होता है। इससे दाँतों के रोग नष्ट हो जाते हैं। दुर्गन्धि भी जाती रहती है। दाँत भी स्वच्छ और साफ हो जाते हैं।

स्नान-विधि

नहाना अत्यन्त उपयोगी है। इससे शरीर स्वच्छ हो जाता है। उक्त आवश्यक कर्मों से निवृत्त होने के पश्चात् ९ बजे के लगभग स्नान करना चाहिये। स्नान के पहिले शरीर में सरसों का तेल लगाना चाहिये। तेल हाथ-पाँव की अँगुलियों, नाक तथा कान में भी लगाया जाय। स्नान के लिए, चाहे कोई भी ऋतु हो, शीतल और पवित्र जल ही अत्यन्त उत्तम है। सर्दी के

दिनों में, खाँसी-जुकाम या ज्वर के समय केवल शरीर को अँगोछ लेना चाहिये। स्नान के बाद किसी मोटे; किन्तु भीगे हुए वस्त्र से शरीर को खूब रगड़कर पोंछ लेना चाहिये। इससे शरीर के राम-छिद्रों में घुसे हुए मल के नन्हें-नन्हें कण भी निकल जाते हैं। स्नान के पश्चात तुरन्त साफ और धुले हुए वस्त्र का उपयोग करना चाहिये। दिन में दो-तीन बार इसी तरह शरीर को भीगे हुए वस्त्र से पोंछकर वस्त्र परिवर्तन करना चाहिये।

स्नान करने के पश्चात् उत्तम रीति से घर में हवन भी करनी चाहिये। हवन की सामग्री में सभी आवश्यक वस्तुएँ मिली हों। हवन बिलकुल पवित्र और शुद्ध मन से करना चाहिये। हवन के लिए अलग ही एक दूसरा कमरा हो। हवन-अग्नि के धुएँ से सारे घर की दुर्गंधि साफ हो जाती है। साथ ही चित्त की मलिनता भी जाती रहती है।

आहार-नियम

आहार और ब्रह्मचर्य का गुरुतर सम्बन्ध है। शरीर और मन के लिए जो कुछ ग्रहण किया जाता है, उसका ही नाम आहार है। शरीर के लिए अनेकों प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ ग्रहण की जाती हैं; अनेकों प्रकार के मिष्टान्न खाये जाते हैं। इसी प्रकार मन का भी भोजन है। मन रूप, रस, गंध, चिन्ता आदि रसों को प्रतिदिन खाया करता है। इसलिए जिस प्रकार शरीर के आहार में सावधानी रखनी चाहिये, उसी प्रकार मन के आहार

में भी सतर्कता से काम लेना चाहिये। दोनों का भोजन प्रत्येक अवस्था में शुद्ध और सात्विक होना चाहिये। पर, यह भी उन दोनों के अन्योन्याश्रय के ही ऊपर निर्भर करता है। यदि भोजन सात्विक होगा, यदि उसमें विदूषित वस्तुएँ न रहेंगी तो उसके खाने से अवश्य सात्विक बुद्धि उत्पन्न होगी। और विना सात्विक बुद्धि के सात्विक भोजन न हो सकेगा। इसलिए मनुष्य को दोनों ओर से सात्विकता की चेष्टा करनी चाहिये। यह तभी हो सकता है, जब वह अपने मन से कुचिंता को दूर कर दे; लोभ को छोड़ दे। लोभ और कुचिंता का त्याग किये विना किसी को शुद्ध भोजन की ओर प्रवृत्ति नहीं हो सकती। और विना शुद्ध भोजन के न तो शरीर की पुष्टि हो सकती है और न स्वास्थ्य ही सवल हो सकता है।

जिस भोजन से आयु, वल और स्वास्थ्य की वृद्धि होती है, उसे सात्विक भोजन कहते हैं; जैसे—दूध, घी, शक्कर इत्यादि। अत्यन्त कड़ा, अत्यन्त सड़ा-गला, वासी, तीक्ष्ण और दुर्गन्ध-युक्त भोजन तामसिक कहा जाता है। ऐसा भोजन कभी न करना चाहिये। इससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। मानवी तेज जाता रहता है। वीर्य-धारण की शक्ति भी प्रायः क्षीण-सी हो जाती है। इसलिए सदैव सात्विक और ताजा ही आहार करना चाहिये। किन्तु अधिक सात्विक भोजन भी लाभप्रद नहीं होता। भूख से अधिक भोजन करना सदैव हानिकारक होता है। इसलिए सात्विक भोजन के लिए भी मिताहारी होने की आवश्यकता है।

भोजन, दिन में केवल दो बार करना चाहिये। एक बार मध्याह्नकाल में भूख लगने पर जलपान भी किया जा सकता है। किन्तु जलपान में फलों को छोड़कर अन्य कोई दूसरी वस्तु न हो। फल भी ताजे निम्नलिखित हों—जैसे—नरिकेल, बेल, आम, कदली, संतरा, लीची, काली जामुन, सेव, नाशपाती इत्यादि। इसके प्रतिकूल तरबूज-जैसे फलों का उपयोग हानिकारक होता है।

व्यवहार की चिन्ता

मनुष्य प्रतिदिन संसार के सैकड़ों मनुष्यों से मिलता रहता है। प्रतिदिन वह सैकड़ों से बातचीत करता और उनके साथ व्यवहार करता है। इसलिए उसे चाहिये कि वह अपने व्यवहारों को पवित्र और सर्व-व्यापी बनावे। किसी के दिल में उसके आचरण से ग्लानि न उत्पन्न हो। अपने व्यवहारों की कुशलता से उसे संसार में सहानुभूति की कमी न रहे। इसके लिए निम्नांकित विधान काम में लाये जा सकते हैं—

१—किसी के चित्त को किसी प्रकार भी दुखाना न चाहिये।

२—झूठी बात कभी न बोले।

३—यथासाध्य मौनावलम्बन धारण करना चाहिये।

४—दूसरों की वस्तु का अपहरण करना पाप समझे।

५—अपनी वर्तमान अवस्था से सदा सन्तुष्ट रहना चाहिये। किसी की बढ़ती हुई उन्नति को देखकर मन में ईर्षा का भाव न लाना चाहिये। पराये लोगों को भी अपना आत्मीय-बन्धु

ही समझे। किसी को दुःखी देखकर उसके प्रति दया प्रकट करे। किसी को पुण्य-कार्य करते हुए देखकर उसे उत्साह और साहस दिलावे।

६—यदि कोई नुकसान करे अथवा आघात करने के लिए भी तैयार हो तो उसके प्रति रोष न प्रकट करे—उसके कार्यों से विचलित न होकर उससे उसी प्रकार बातें करे जैसे अपने छोटे बन्धु के साथ किया जाता है।

७—देवता हमारी भलाई करते हैं—इस दृढ़ विश्वास को कभी अपने चित्त से अलग न करे। कारण देवता के प्रति विश्वास करना ईश्वर के प्रति विश्वास करना है। इससे मनुष्य का ज्ञान-धर्म बढ़ेगा और वह दुष्ट की सङ्गति करने में हिचकिचाएगा।

८—सेवा-वृत्ति के पुजारी बनो। नीच-से-नीच श्रेणी के मनुष्य के अन्दर भी तुम ईश्वर की ज्योति देखो। यदि तुम किसी के नौकर हो तो अपने स्वामी का काम उसी प्रकार करो जिस प्रकार तुम अपना काम करते हो। संसार में कर्तव्य ही प्रधान वस्तु है। जो दिन-रात अपने कर्तव्य के पथ पर चलता रहता है, उसे संसार की परिस्थितियाँ नहीं सतातीं और सांसारिक मनुष्य उसे प्यार भी करते हैं। इसलिए तुम संसार में कर्तव्यशील बनो।

३–स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य

स्वास्थ्य जीवन की सम्पत्ति है। जिस मनुष्य ने अपने इस सम्पत्ति की रक्षा की है, वह संसार में कभी दुःखी नहीं हो सकता। उसके सामने कभी यह प्रश्न आ ही नहीं सकता कि वह अपनी जीवन-तरणी को संसार में कैसे और किस प्रकार चलावे? यदि संसार-सागर में भयङ्कर लहरें भी उठती होंगी; यदि तूफान के झोंके चारों ओर से डटकर उसके विनाश की तैयारी भी करते होंगे; तो भी वह अपनी नाव को उसमें छोड़ देगा। कारण उसके पास स्वास्थ्य की सम्पत्ति है। उसका शरीर साहस और उद्योग से भरा है। उसके मन में विजय की कामनाएँ हलचल मचा रही हैं। फिर वह क्यों डरने लगा? क्यों संसार से पीछे कदम हटाने लगा? कदम तो हटाते हैं वे, जिन्होंने अपनी अज्ञानता से अपना स्वास्थ्य चौपट कर दिया है; जिन्होंने स्वास्थ्य को सबल करनेवाले अपने शरीर के वीर्य को पानी की तरह बहाकर अपने शरीर को खोखला बना दिया है, जिनके शरीर में पुरुषत्व और मर्दानगी नाम की कोई चीज शेष नहीं रह गई है। इसलिए प्राचीन शास्त्रकारों ने लिखा है कि स्वास्थ्य ही जीवन है। मनुष्य को अपने इस जीवन की रक्षा में सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

यह सभी चाहते हैं कि हम स्वस्थ रहें; हमारे शरीर में कांति और तेज रहे। अमीर तथा गरीब सभी इसकी कामना करते हैं।

मृत्यु के मुख में जानेवाला एक बूढ़ा भी दिन-रात अपने स्वास्थ्य के लिए भगवान से प्रार्थना करता है। माता-पिता अपने बच्चों की आरोग्यता के लिए मिन्नतें मानते हैं; किन्तु इससे क्या उन्हें स्वास्थ्य मिल जाता है? क्या उनके शरीर के रोग उन्हें छोड़कर भाग जाते हैं और वे उद्यमी और उत्साही बन जाते हैं? नहीं, ऐसा कभी नहीं होता। स्वास्थ्य भगवान की सम्पत्ति नहीं है। भगवान उसका मालिक नहीं है। उसका मालिक तो मनुष्य स्वयं अपने ही है। वह स्वयं अपने स्वास्थ्य का जिम्मेदार है। यदि वह चाहे तो अपने स्वास्थ्य को सबल बना सकता है और वही उसका विनाश भी कर सकता है। ये दोनों शक्तियाँ उसीके हाथ में हैं। इस सम्बन्ध में जर्मन के एक विद्वान डाक्टर ने लिखा है कि—'मनुष्य स्वतन्त्र है। यद्यपि उसके ऊपर एक अद्भुत शक्ति सदैव शासन करती है; किन्तु उसने मनुष्य को प्रकृति की ओर से बिलकुल स्वाधीन-सा कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि प्रत्येक मनुष्य इस संसार का राजा है। राजा से तात्पर्य है कि वह अपने को इस योग्य बना सकता है कि संसार की अवस्थाएँ उसके वशीभूत हो जायँ। स्वास्थ्य ही उसका सहायक है और वह अपने स्वास्थ्य का स्वयं निर्माता है।'

'सूक्ति' में भी इसीके सम्बन्ध में लिखा हुआ है कि:—

धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्।
रोगावस्याऽपहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च॥

"संसार में चारों पुरुषार्थों का मूल कारण स्वास्थ्य ही है। और रोग उन चारों का विनाश कर डालते हैं। यही नहीं; किन्तु जीवन का भी प्रायः सर्वनाश हो जाता है।" सचमुच सूक्ति का यह कथन बिलकुल ठीक है। संसार में आरोग्य ही सब कुछ है। वही सुखों की जड़ और मुक्ति का मूल भी है। रोगी होकर हम संसार में कुछ नहीं कर सकते। न तो संसार का काम कर सकते हैं और न अपने उस लोक का ही कल्याण कर सकते हैं। जिस विलास में फँसकर स्वास्थ्य का नाश किया जाता है उसकी सामग्रियाँ भी रोगी होने पर काँटे की भाँति चुभने लगती हैं। अतः सुन्दर स्वास्थ्य मनुष्य को प्रत्येक अवस्था के लिए आवश्यक है।

स्वास्थ्य की भित्ति

स्वास्थ्य शरीर के लिए आवश्यक है। उससे शरीर में तेज, बल और साहस का सञ्चार होता है। किन्तु ऐसे उपयोगी स्वास्थ्य के सुधार की ओर हम बिलकुल ध्यान ही नहीं देते। और अपनी अज्ञानता से उसकी भित्ति को ही गिराने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि थोड़े ही दिनों में हमारे स्वास्थ्य का किला धराशायी हो जाता है। शरीर जीर्ण हो जाता है। बुढ़ापा आ घेरता है। सारी शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और असमय में ही मृत्यु के लक्षण साफ-साफ दिखाई देने लगते हैं। इसलिए स्वास्थ्य की भित्ति को सुदृढ़ करना प्रत्येक मनुष्य का धर्म और कर्तव्य है। पर, स्वास्थ्य की भित्ति को सबल बनाने के लिए

किसी ऐसी शक्ति की आवश्यकता होती है, जिसको प्रत्येक मनुष्य अपने शरीर ही में उत्पन्न कर सकता है। चाहे करोड़ों रुपए खर्च करो, लाखों की सम्पत्ति लुटा दो पर, यदि शरीर में वह शक्ति नहीं पैदा की गई, तो फिर कभी भी सुन्दर स्वास्थ्य नहीं प्राप्त किया जा सकता।

वह शक्ति, वीर्य-धारण की शक्ति है। और वीर्य-धारण ही ब्रह्मचर्य है। किसी डाक्टर ने कहा है—वीर्य शरीर का राजा है। सचमुच वह शरीर का राजा है। यदि उसका शासन ठीक रहेगा, यदि वह नियम-पूर्वक मानव नामक शक्ति के द्वारा संचालित किया जायगा तो फिर कभी स्वास्थ्य की भित्ति कमजोर न हो सकेगी। वह दिन पर दिन सुदृढ़ ही होती जायगी। और एक दिन मनुष्य इसी शक्ति से वह काम कर देगा जिसे देखकर सारा संसार आश्चर्य प्रगट करेगा। किन्तु आज चारों ओर स्वास्थ्य का अभाव है। जिसी नवयुवक को देखिये, जिसी पुरुप और स्त्री की ओर निगाह डालिए; उसी के स्वास्थ्य की दीवारें गिरती हुई नजर आती हैं। न उनमें सत्य का वल है और न तेज की शक्ति। ब्रह्मचर्य के पूर्ण अभाव में उनके सारे मान की सम्पत्ति नष्ट हो गई है—स्वाहा हो गई है !!

मनुष्य समाज और राष्ट्र का अंग होता है। कहना चाहिये प्रत्येक मनुष्य से समाज और राष्ट्र की रचना होती है। जब भारतीय स्त्री-पुरुषों का स्वास्थ्य गिर गया है, जब उनके अन्दर से

ब्रह्मचर्य की शक्ति निकल गई है, जब वे काम की अग्नि में अपना सर्वस्व स्वाहा कर चुके हैं तो फिर समाज और राष्ट्र ही कैसे स्वस्थ और सबल हो सकता है ? जिस समाज के छोटे-छोटे बच्चे तक काम के शिकार हो रहे हैं; जिस समाज के करोड़ों स्त्री-पुरुष पाप के मार्ग पर अपने जीवन का अस्तित्व बेच रहे हैं; उस समाज की दुर्गति को छोड़कर और क्या दशा हो सकती है ? समाज तो तभी सबल और शक्तिमान होगा, जब उसकी गोद में खेलनेवाले बच्चे-बच्चे के स्वास्थ्य की भित्ति सुदृढ़ होगी। और यह तभी होगा जब वे ब्रह्मचारी बनेंगे, जब वे वीर्य के मूल्य को समझकर उसे पानी की भाँति न बहाएँगे।

शरीर का बल

संसार कर्मक्षेत्र है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में सैकड़ों परिस्थितियाँ आती और जाती रहती हैं। मनुष्य को प्रतिदिन इनका सामना करना पड़ता है। यदि मनुष्य के शरीर में बल रहता है—यदि उसके हृदय में साहस रहता है तो वह इन परिस्थियों की परवाह न करके निरन्तर जीवन-मार्ग में अपना कदम आगे बढ़ाता जाता है। कुसमय हो, या सुसमय; रात हो या दिन; प्रकाश हो या अँधेरा; किन्तु वह कभी अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होता—कभी कठिनाइयों को अपने सामने नहीं आने देता। यदि कभी वे आ भी जाती हैं तो वह उनसे डरकर हताश नहीं बन जाता—अपने कर्तव्य से मुँह मोड़कर कापुरुप नहीं हो

जाता। उसका जीवन-संसार भी सुख से भरा रहता है। रोग और व्याधियाँ उसके शरीर को स्पर्श नहीं कर पातीं। शरीर तेज से चमकता रहता है। मुख पर एक ज्योति-सी खेलती रहती है। और यदि शरीर में बल न हो; हृदय में शक्तियों की कमी हो तो इसके बिलकुल प्रतिकूल परिणाम होता है। संसार की आपत्तियाँ सदा घेरे रहती हैं। साहस और शौर्य के अभाव में वह बेचारा आकुल होकर या तो आत्मघात कर लेता है या संसार से दूर हट अलग रहने की कोशिश करता है।

शारीरिक बल किसे कहते हैं? यह कहाँ और किससे उत्पन्न होकर शरीर में नवजीवन का संचार करता है? जिससे मनुष्य चलता-फिरता है, जिससे वह भोजन प्राप्त करता है, जिससे संसार की परिस्थियों को वह अपने अनुकूल बनाता है, जिससे वह अपने पीछे चलनेवाले कुटुम्ब की सहायता करता है और जिससे वह संसार के क्षेत्र में अपने मानव-जीवन को सार्थक करता है—*इसीको शारीरिक बल कहते हैं। यह मनुष्य के शरीर ही में पैदा* होता है और उसका यथेष्ट परिणाम में पैदा करना मनुष्य ही का काम है। यदि मनुष्य चाहे तो महाबली बन सकता है। यदि वह चाहे तो महावीर की भाँति पराक्रमी बनकर क्षण भर में द्रोणगिरि पर्वत को उठाकर किसी के सामने रख सकता है और यदि वह चाहे तो कायर तथा नपुंसक भी बन सकता है।

लोग आश्चर्य करेंगे! पर भारत का माध्यमिक युग का इतिहास

इसका साची है। उस समय भारत के बच्चे-बच्चे का शरीर अगाध बल से भरा रहता था। प्रत्येक नवजवान अपने हृदय में संसार तक को हिला देने की शक्ति रखता था। वह भरत बच्चा ही तो था, जिसने वन-केसरी की चोटी पकड़ अपनी माता के सामने लाकर खड़ा कर दिया था ! वह अभिमन्यु कैशोर बालक ही तो था जिसने महाभारत के भयंकर युद्ध में अपने धनुष-टंकार से सप्त महारथियों के हृदय को हिला दिया था; आखिर वे भी तो मनुष्य ही के बच्चे थे। उनका भी शरीर तो हमारी ही भाँति हड्डी और माँस से बना था; किन्तु वे हमारी भाँति कायरों की सन्तान न थे। हमारी ही तरह उनके बच्चे नहीं थे जिन्होंने अपने शरीर के निष्कर्ष को बनाने के लिए रक्त को पानी की तरह बहा दिया था। उनके माता-पिता बली थे। फिर वे क्यों न बली होते ? क्यों न उनका शारीरिक बल संसार में सबसे बढ़ा-चढ़ा रहता ?

शारीरिक बल को बढ़ाने का मुख्य साधन वीर्य है। वीर्य शरीर का निष्कर्ष है। जिस प्रकार बिना तेल के दीपक अपने प्रकाश को नहीं रख सकता, उसी प्रकार शरीर बिना वीर्य के अधिक दिनों तक नहीं टिक सकता। वीर्य ही साहस है; वीर्य ही शक्ति है और वीर्य ही विकास है। इसकी रचा हनूमान ने की थी। इसी की शक्ति से भीष्म ने बाणों की शय्या पर भी आनन्द-पूर्वक शयन किया था। जो अपने वीर्य की रचा में सदैव दत्तचित्त रहता है, वही संसार में बलवान और सामर्थ्यवान बन सकता

है। वही संसार की विपत्तियों का सामना कर अपने तथा अपने कुटुम्ब को सुखी बना सकता है। अतः शारीरिक शक्ति के लिए वीर्य की रक्षा करना अनिवार्य है।

आत्मबल

शारीरिक-बल की भाँति आत्मबल भी मनुष्यों के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बल्कि यह कहना चाहिये कि संसार में यही बल सबसे बड़ा और प्रभावशाली है। प्राचीन काल में भारतवर्ष आत्मबल का भंडार-सा था। राजा-रंक, ऋषि-मुनि सभी इस बल से प्रभावित थे। बड़े-बड़े दैवी कार्यों को क्षण-मात्र में पूरा कर डालना उनके बाँये हाथ का खेल था। बड़ी-बड़ी प्रतिद्वंदी शक्तियों को परास्त कर देना उनके लिए आसान-सा था। जहाँ एक ओर शारीरिक बल उनकी नसों में जीवन दौड़ा रहा था, वहाँ दूसरी ओर आत्मबल भी उन्हें साहसी और उद्यमी बनाये हुए था। कठिन-से-कठिन संकट आ पड़े; भयंकर से भयंकर विपत्तियाँ सिर पर मँड़राने लगें पर, वे अपने साहस को नहीं छोड़ते थे। उनकी आत्मा उन्हें इतना दृढ़ बनाये रहती थी कि वे उनसे कभी भी विचलित न होते थे—कभी भी पराजय स्वीकार कर अपने उत्थान की आशा नहीं छोड़ देते थे!

वह आत्मबल ही का प्रभाव था जब कैकेयी ने कोप-भवन में बैठकर दशरथ से यह आग्रह किया कि श्रीरामचन्द्र को राजगद्दी न दी जाय। राजगद्दी उसके पुत्र भरत को हो और राम चौदह वर्ष

के लिए कठोर वन में निर्वासित कर दिये जायँ। राम के कानों में भी खबर पड़ी। पर क्या मजाल कि मस्तक पर शिकन आने पावे। उन्होंने हँसकर हर्ष से महाराज दशरथ से प्रार्थना की— सेवक राम वन जाने के लिए खड़ा है, आज्ञा दीजिए। यह है आत्मबल! इतने विशाल राज के प्रभुत्व को छोड़कर वन में जाना क्या साधारण बात थी? क्या श्रीरामचन्द्र के साथ लक्ष्मण का वह त्याग अपूर्व नहीं था? क्या भाई के वियोग में भटकते हुए भरत ने अपने आत्मबल का उत्कट का उदाहरण नहीं दिया था? दुनिया आज भी उस पर गर्व करती है। पर, आज देश में ऐसा कौन राजकुमार है जो भाई के लिए अपना विशाल राज्य छोड़ने के लिए तैयार होगा? ऐसा कौन भाई है, जो भाई के सुखों के लिए अपने राज्य-सुख को पैरों से ठुकरा देगा! आज तो भाई-भाई आपस में लड़ रहे हैं। एक दूसरे का गला मरोड़ रहे हैं। एक-एक बीघे भूमि के लिए लाठी-चोटी का संग्राम हो रहा है।

पर यह क्यों? इसीलिए कि उनमें आत्मबल था। हम में वह नहीं है। उन्होंने ब्रह्मचर्य के अखंड बल से अपने को प्रभावित कर लिया था। उनके शरीर का कोना-कोना एक अद्भुत शक्ति से जगमगा रहा था। वे जीवन को समझते थे। ब्रह्मचर्य ने उनके मानस और मस्तिष्क में वह ज्योति भर दी थी, जिसे हम मनुष्यता के नाम से पुकारते हैं। किन्तु हम अपने आत्मबल को खो

चुके हैं। छोटी-छोटी विपत्तियों से विचलित हो जाना हमारा धर्म-सा हो गया है। हम एक ऐसे वातावरण में पड़े हैं; एक ऐसी परिस्थिति में जबर्दस्ती से डाल दिये गये हैं, जहाँ ब्रह्मचर्य का पूर्ण अभाव है। न तो हमें ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी जाती है और न यह बताया जाता है कि मानव-जीवन के लिए वही एक शक्ति है—वही एक ज्योति है। इसीसे हम अन्धकार में पड़े हैं। इसीसे हम आज कायर और कापुरुष बने हैं। इसीसे हम उन्हीं श्रीराम की सन्तान होकर भी उनके समान नहीं हो पाते।

आज भी जो इस परिस्थिति को अतिक्रमण कर बाहर निकल गया है; जिसने ब्रह्मचर्य की मर्यादा अच्छी तरह समझ ली है, वह संसार के सामने आत्मबल का उदाहरण है। कौन नहीं जानता कि आज जेल की दीवारों के अन्दर रहने पर भी महात्मा गांधी सारे संसार को हिला रहे हैं। उनकी मुख से निकली हुई एक-एक बात को सारा संसार उसी प्रकार सुन रहा है, जैसे कोई पैगम्बर या धार्मिक गुरू की बातों को सुनता है। यह किसका प्रभाव है? केवल ब्रह्मचर्य का। महात्मा गांधी ने अपने थोड़े काल के ब्रह्मचर्य से अपने को इतना आत्मबली बना लिया है कि बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ भी उनके सामने हेय-सी हैं। बड़ी-बड़ी बाधाओं को वे केवल मुस्कुरा कर ही टाल दिया करते हैं। भारत के प्रत्येक बच्चे को महात्माजी के इस उत्कट उदाहरण को सत्य मानकर ब्रह्मचारी बनने की कोशिश करनी चाहिये।

दीर्घायु

संसार में एक ओर सम्पत्ति है—भोग-विलास की सामग्रियाँ हैं और दूसरी ओर जीव हैं। जीवों में मानव-जीवन ही सर्वश्रेष्ठ और अत्युत्तम है। इसी का अस्तित्व चारों ओर दिखाई देता है। इसी के उपभोग के लिए, प्रकृति की ओर से ये सम्पूर्ण सामग्रियाँ भी मिली हुई हैं। प्रत्येक मनुष्य इनका अधिकारी है। उनके नियन्ता की कदाचित् यही अभिलाषा रहती है कि मनुष्य इन सामग्रियों का उपभोग कर अपने जीवन का विकास करे और उस विकास से संसार के विकास में सहायता मिले। इस लिए यह निश्चय-सा है कि मनुष्य को इन वस्तुओं के उपभोग तथा संसार के विकास के लिए अपने जीवन को उचित समय तक स्थायी रखना पड़ेगा। प्रकृति की ओर से मनुष्य की आयु भी अधिक काल की ही होती है। अर्थात् उसके अनुसार उसे सौ वर्ष से पहिले कभी नहीं मरना चाहिये। किन्तु आज कौन सौ वर्ष तक पहुँचता है, किस पर प्रकृति का यह सिद्धान्त लागू होता है? इसका यह तात्पर्य नहीं कि यह सिद्धान्त झूठा और कल्पित है। नहीं, यह सत्य है। पर, आयु को स्थायी बनाने तथा बढ़ाने के लिए प्रकृति से हमें जो साधन मिले हैं, उन्हें हम भूल बैठे हैं। फिर क्या यह सम्भव है कि हम उस सिद्धान्त के पथ पर चल सकते हैं? नहीं, संसार में साधन ही तो सर्वस्व है। जब साधन ही नहीं तो उस पर चलने की आशा कैसी?

उन साधनों में सबसे प्रभावशाली साधन ब्रह्मचर्य है। इससे स्वास्थ्य और आत्मबल के बढ़ने के साथ ही साथ आयु की भी वृद्धि होती है। एक स्थान पर लिखा है—

दीर्घायुर्ब्रह्मचर्यया।

अर्थात् ब्रह्मचर्य के पालन से मनुष्य को दीर्घायु प्राप्त होती है। इसी का पृष्टपेपण यजुर्वेद के ये दो श्लोक भी कर रहे हैं—

यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं,
स देवेषु कृणुते दीर्घमायुः
स मानुषेषु कृणुते दीर्घमायुः।

जो अपने शरीर में वीर्य को सुरक्षित रखता है, वह देवताओं में दीर्घायु प्राप्त करता है और वह साधारण लोगों में भी दीर्घजीवी होता है। अपने में वीर्य संचित करने वाला पुरुष, ज्ञानी हो या मूर्ख, दोनों अवस्थाओं में दीर्घजीवन प्राप्त करता है।

न तन्द्रा क्षांसि पिशाश्चरन्ति,
देवानामोजः प्रथमजं ह्येतत्।

जो पुरुष वीर्य की रक्षा करता है, उसे राक्षस और पिशाच दुख नहीं दे सकते। यह वीर्य ही विद्वान लोगों का आत्मतेज या दिव्य गुणों का सारांश है। यह उनमें सबसे पहले उत्पन्न होता है।

अब तो यह बात भली भाँति विदित हो गई कि दीर्घायु के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। यदि कोई चाहे कि वह वासना की अग्नि में अपने को बर्बाद करता रहे और

साथही दीर्घजीवी भी बने तो यह संभव नहीं हो सकता। दोनों एक दूसरे के प्रतिकूल हैं। शरीर का जो ओज है, जिससे आयु का निर्माण होता है; यदि वही न रहेगा तो आयु कैसे बढ़ेगी ? कैसे मनुष्य अपने जीवन को स्थायी बना सकेगा ? आज देश के लाखों नवयुवक असमय में ही मुर्झाकर काल के गाल में जा रहे हैं। करोड़ों बालिकाएँ अपनी कच्ची उमर में ही माता के सिंहासन पर बैठ एक धुँधली ज्योति पैदा कर इस संसार से विदा हो रही हैं। इसका क्या कारण है ? क्या इसका यह कारण है कि विधाता ने इनके भाग्य में यही लिखा था ? क्या वे इतने ही दिनों के लिए सचमुच संसार में आई थीं ? नहीं, किसी कली पर यदि कोई उसके शैशव काल ही में हाथ रख दे तो क्या उसके धक्के से वह मुर्झा न जायगी ? वह कमजोर होकर हवा की गहरी थपड़ियाँ खाकर धूल में गिर न पड़ेगी ? इसी प्रकार बालिकाओं और बालकों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये। देश में बाल-विवाह की प्रथा जोरों से प्रचलित है। इस प्रथा के अनुसार छोटे-छोटे बालकों के साथ सोलह-सोलह वर्ष की युवती का गठबंधन होते देखा जाता है। दूसरी ओर छोटी-छोटी कुमारियाँ भी बड़े-बड़े बूढ़ों और पूर्ण वयस्क मनुष्यों के साथ ब्याही जाती हैं। एक ओर आग है, दूसरी ओर तिनका। क्या नाश और महाविनाश को छोड़कर इसका कोई दूसरा परिणाम निकल सकता है ?

प्राचीन काल में इसी भारतवर्ष में लोग दो-दो सौ वर्ष तक

बराबर जीवित रहते थे। क्या वे मनुष्य नहीं देवता थे? पर नहीं, उनमें ब्रह्मचर्य का बल था। ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन से उनके शरीर की शक्तियाँ दिन-दिन दूनी होती जाती थीं। एक कहावत है—'साठा तब पाठा'। सचमुच उस समय साठ वर्ष की अवस्था में लोग पूर्ण युवक समझे जाते थे। तभी तो वे डेढ़-दो सौ वर्ष तक जीवित रहते थे। पर, आज तो कोई पचास वर्ष के आगे भी नहीं जाता! पचीस और तीस वर्ष की अवस्था ही में जीवन की इहलीला समाप्त हो जाती है। लोगों कहते हैं—यह कलिकाल है; कलिकाल में मनुष्य थोड़े ही समय तक जीवित रहता है! कितनी अज्ञानता की बात है! भला प्रकृति का नियम भी कहीं असत्य होता है! आज भी जो ब्रह्मचारी होगा, जो अपने शरीर को संयम की डोरी से कसकर बाँधे रहेगा; इसमें सन्देह नहीं कि उसकी आयु सौ-डेढ़-सौ वर्ष से कम न होगी। अभी थोड़े ही दिन हुए मद्रास के आस-पास का रहनेवाला एक बूढ़ा एक सौ पैंतीस वर्ष की अवस्था का होकर मरा है। उसके सम्बन्ध में पता लगाने पर यह मालूम हुआ है कि वह ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करनेवाला पूर्ण संयमी था। इसके अतिरिक्त यहाँ हम एक ऐसी तालिका दे रहे हैं, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि संयमी और ब्रह्मचारी ही अधिक दिनों तक जीवित रह सकते हैं। आज इस युग में भी यदि कोई संयम और ब्रह्मचर्य-व्रत का सहारा ले तो वह भी चिर दिनों तक जीवित रह सकेगा।

तालिका इस प्रकार है—भीष्म पितामह १७०, महर्षि व्यास १५७, वासुदेव १५५, भगवान् बुद्ध १४०, धृतराष्ट्र १३५, श्रीकृष्ण १२६, रामानन्द गिरि १२५, महात्मा कबीर १२०, युगराज लोहकार ११५, स्वामी सच्चिदानन्द १००, महाकवि मतिराम ९९, गोस्वामी तुलसीदास ९१, यतीन्द्रनाथ ठाकुर ८५, सूरदास ८० और मद्रास का वह बूढ़ा १३५ वर्ष तक जीवित थे। अन्तिम बूढ़ा इस युग में संसार का सबसे प्राचीन मनुष्य था। इनके अतिरिक्त इस समय देश में अनेकों ऐसे मनुष्य मौजूद हैं जिनकी अवस्था अस्सी वर्ष से अधिक है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का धर्म है कि वह दीर्घजीवन के लिए ब्रह्मचारी और संयमी बने।

साहस—शक्ति

साहस—शक्ति दोनों शब्द एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। जिसमें साहस होगा उसी में शक्ति होगी। जिसमें शक्ति होगी उसी में साहस होगा। दोनों एक साथ रहते हैं और दोनों मानव-जीवन के लिए बड़े उपयोगी हैं। मनुष्य इस संसार में बिना साहस—शक्ति के एक तिनका भी नहीं उठा सकता। दूसरों के जीवन को कौन कहे, अपने जीवन का भी भली प्रकार निर्वाह नहीं कर सकता। उपनिषद में लिखा है—

बलेनवपृथ्वीतिष्ठति, बलेनान्तरिक्षम्।
वीर्यमेवबलम्, बलमेववीर्यम्॥

"शक्ति से ही पृथ्वी ठहरती है। और शक्ति से ही आकाश भी ठहरा हुआ है। वीर्य ही शक्ति है और शक्ति का नाम ही वीर्य है।"

सचमुच वीर्य साहस और शक्ति का भंडार है। इसी में वह खजाना भरा हुआ है जिसे पाकर मनुष्य 'मनुष्य' हो जाता है। और देवता भी उनकी शक्तियों को देखकर तरसने लगते हैं। यदि कोई कुछ संसार में काम करना चाहता है; अपने मानवी गुणों के विकास से संसार को चमत्कृत करना चाहता है तो उसे सबसे पहले ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिये। ब्रह्मचर्य उसे एक ऐसी शक्ति प्रदान करेगा जिसके बल पर दुश्मनों के बीच में वह अकेला भी सबको पछाड़ सकता है—उन्हें अभिभूत कर सकता है। प्राचीन काल में भीष्मपितामह ने क्या किया था? उन्होंने इसी ब्रह्मचर्य की शक्ति से महाभारत संग्राम में अपने शत्रुओं को विचलित-सा कर दिया था। उनकी बाण-वर्षा देखकर बड़े-बड़े दिग्गज महारथी भी काँप उठते थे। हनूमान की वीरता भी क्या कम थी? अकेले रावण-जैसे सुभट के दर्बार में जाना और उसकी नगरी को जला खाककर देना क्या साधारण बात थी? राम और लक्ष्मण की शक्ति क्या संसार में अतुलनीय नहीं है? जंगल की विपत्तियों को सिर पर लाद करके उन्होंने किस तरह रावण का महाविनाश किया? क्या इससे यह बात नहीं प्रगट होती कि अकेला ब्रह्मचारी, संसार की भयंकर-से-भयंकर शक्ति को रौंदने का अपने में साहस रखता है।

अभी कलकी बात है। भारत के कोने-कोने में एक सन्यासी के नाम का डंका पिट गया था। वह सन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती थे। कौन नहीं जानता कि स्वामी दयानन्द के अनेकों जानी दुश्मन थे। अनेकों उनके जीवन के विनाश के लिए अवसर और मार्ग खोजते रहते थे। पर क्या हुआ ? क्या स्वामीजी का कोई कुछ कर सका ! स्वामीजी निर्भय चित्त से उस स्थान में भी गये जहाँ उनके अनेकों दुश्मन थे; जहाँ प्रत्येक घड़ी उनकी मृत्यु की आशंका वनी रहती थी। वहाँ भी स्वामीजी ने अपने मतका प्रचार किया। हजारों विपत्तियों के बीच में खड़े होकर उन्होंने व्याख्यान दिये। सैकड़ों प्रतिद्वन्द्वियों को अपने तर्कों से आक्रान्त किया। पर, उनका कोई कुछ बिगाड़ न सका। यह सब केवल ब्रह्मचर्य की प्रभुता थी। ब्रह्मचर्य का तेज उनके शरीर में समाया हुआ था। साहस और शक्ति का रग-रग में समावेश था। फिर कायर और कुचाली उनका क्या बिगाड़ सकते थे। कहीं पाप भी पुण्य के सन्मुख जाता है !

इस समय भी अनेकों ऐसे महात्मा हैं जो ब्रह्मचर्य के बल पर अद्भुत कार्य कर रहे हैं। इस युग के महापुरुष महात्मा गाँधी ने केवल एक सप्ताह के अन्दर ही अपनी ब्रह्मचर्य शक्ति से वह अद्भुत काम कर दिखाया, जिसके अभाव में हिन्दू समाज पंगुल कहा जाता था। सचमुच ब्रह्मचर्य की शक्ति अनुपम और अजेय है !

४—बाल्य-जीवन में सावधानी

बालक राष्ट्र की सम्पत्ति होते हैं। उन्हीं के ऊपर देश का उत्थान और पतन निर्भर-सा रहता है। जो देश या समाज, अपने छोटे-छोटे बालकों के जीवन की उपेक्षा न करके उनका पूर्णतः ध्यान रखता है, वही भविष्य में अपने सुखों का सत्-निर्माण कर सकता है—वही उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच कर संसार की सारी शक्तियों को भी आश्चर्य में डाल सकता है। यही नहीं, बल्कि वह संसार के सामने एक आदर्श गुरु की भाँति खड़ा होकर सब को मानवीय-शास्त्र का सुन्दर उपदेश भी दे सकता है। इसीलिए अमेरिका के एक दार्शनिक विद्वान ने लिखा है—"किसी भी देश के बालक उस देश के प्राण होते हैं। उन्हीं के अन्दर वह शक्ति छिपी रहती है जिससे राष्ट्र और समाज का कल्याण होता है। राष्ट्र और समाज कोई दूसरी वस्तु नहीं; वह उन्हीं बालकों का एक विकसित, संगठित और प्रौढ स्वरूप है। जब देश के बच्चे सबल होंगे, जब उनका जीवन आदर्श होगा, तब राष्ट्र भी सबल और आदर्श बनेगा। अन्यथा उन्नति के पथ पर जाना उसके लिए अत्यन्त कठिन और दुःसाध्य है।"

वास्तव में अमेरिकन दार्शनिक का यह कथन अक्षरशः सत्य है। संसार की ऊँची-से-ऊँची शक्ति भी पहले अपनी बाल्या-वस्था में थी। संसार के अनेकों महापुरुष भी उसी की गोद

से निकले हैं। पहले संसार के जीवों को उसी अवस्था से सामना करना पड़ता है। फिर क्या यह सत्य नहीं है कि उस अवस्था में जैसा हमारे जीवन का निर्माण होगा, उसी की छाप हमारे भावी जीवन के सफेद और शून्य चित्रपट पर पड़ेगा। और फिर उसी के अनुसार हमारे समाज तथा राष्ट्र का रूप रंग भी बनता-बिगड़ता रहेगा। यदि बाल्यावस्था में, बालकों के जीवन का सुधार किया गया, उन्हें अच्छी परिस्थिति और अच्छे वातावरण में रक्खा गया, तो कभी वे पापी और दुराचारी बनकर अपने राष्ट्र का संहार न करेंगे। बालकों के इसी महत्त्व-पूर्ण जीवन की रक्षा के लिए आज प्रत्येक सभ्य राष्ट्र में अनेकों बाल-समितियाँ खुली हुई हैं। यहाँ हम कुछ समितियों का उल्लेख कर रहे हैं जिनसे यह अच्छी तरह विदित हो जायगा कि बालकों का जीवन कितना महत्त्वपूर्ण और कितना लोकप्रिय है।

बालकों के सुधार-सम्बन्धी इंगलैण्ड, अमेरिका और सोवियट रूस में जितनी समितियाँ और संस्थाएँ हैं, उतनी अन्य किसी भी देश में नहीं हैं। इंगलैण्ड में एक अंग्रेजी समाचार-पत्र में निकली हुई तालिका के अनुसार बच्चों के सुधार के लिए दो सौ के लगभग संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं में वहाँ 'बच्चों के क्लब' का बड़ा नाम है। अनेकों बालक इस क्लब के सदस्य हैं। इस क्लब का प्रत्येक सप्ताह में अधिवेशन होता है और उसमें अच्छे-अच्छे विद्वानों द्वारा उपदेश भी दिलाये जाते हैं। उसी अंग्रेजी-

पत्र के द्वारा यह भी ज्ञात हुआ है कि इस क्लब के बालक-सदस्य अपनी पूर्ण अवस्था में बड़े विद्वान् तथा उन्नति-प्रेमी हुए हैं। अमेरिका में भी इसी ढंग की सैकड़ों संस्थाएँ हैं। ये संस्थाएँ बच्चों के पढ़ने योग्य सुन्दर साहित्य का भी निर्माण करती हैं।

सोवियट रूस बच्चों की रक्षा करने में सबसे आगे बढ़ा हुआ है। वहाँ बाल-संस्थाएँ भी अधिक हैं और उनके द्वारा बालकों के जीवन को सुन्दर साँचे में ढालने का सराहनीय प्रयत्न किया जाता है। उनमें बच्चों को उनकी शक्ति और प्रवृत्ति के अनुसार योग्य सिपाही, कारीगर, विद्वान, कवि, लेखक, नेता, सम्पादक सभी कुछ बनाया जाता है। अनेकों पत्रिकाएँ भी निकलती हैं। प्रत्येक मास सुन्दर, सरल भाषा में सैकड़ों पुस्तकें भी प्रकाशित होती हैं। यही कारण है कि आज दिन इंगलैण्ड, अमेरिका और सोवियट रूस संसार में सबसे आगे बढ़े हुए हैं। इनकी शक्तियों को देखकर दुनिया के सभी लोग काँप रहे हैं; इनकी विज्ञान-अविष्कारक-प्रतिभा पर आश्चर्य प्रकट कर रहे हैं। और उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक मानकर उनकी सभ्यता का अनुगामी बनने में अभिमान जता रहे हैं।

परन्तु भारतवर्ष अभी तक इस सम्बन्ध में बिलकुल अन्धकार में पड़ा हुआ है। जहाँ तक पता है उसके अनुसार इस अभागे देश में ऐसी कोई प्रभावशाली संस्था नहीं, जिसके द्वारा बालकों का सुधार होता हो। ऐसी कोई समिति नहीं, जिसका एक-

मात्र उद्देश्य बालकों की रक्षा करनी हो। बाल-साहित्य भी प्रायः कुछ भी नहीं है। न तो बालकों को अच्छी बातें बताई जाती हैं और न उनके स्वास्थ्य का ही कुछ प्रबन्ध किया जाता है। माता-पिता भी प्रायः इस ज्ञान से अनभिज्ञ ही रहते हैं। वे वर्ष-दो-वर्ष के अन्दर दो-चार बच्चे पैदा करना अवश्य जानते हैं; पर यह नहीं जानते कि बालकों का पालन किस प्रकार किया जाय; उन्हें किस तरह की हवा और परिस्थिति में रखा जाय? इसका परिणाम यह होता है कि बालक या तो असमय में ही उनकी गोद को सूनी कर देते हैं या बड़े होकर कुचाली, पापी और दुर्व्यसिनी बन जाते हैं। जब भारतीय बच्चों की यह अवस्था है तब भारत का समाज या राष्ट्र कैसे सबल होगा? कैसे वह विपत्तियों के सिकंजे से अपना पिंड छुड़ा सकेगा? यदि वह पतन के गडढे में गिरकर अपने सर्वनाश की घड़ियाँ गिन रहा है; यदि वह दूसरों के पैरों से कुचला जाकर करुणापूर्ण सिसकियाँ भर रहा है, तो आश्चर्य क्या? कोई भी देश अपनी बाल-सम्पत्ति को बर्बाद कर पतन के गह्वर में जा सकता है।

बच्चों की रक्षा का भार

बच्चों की रक्षा का भार समाज, राष्ट्र और बच्चों के माता-पिता पर है। परन्तु इनमें सबसे अधिक हाथ उनके माता-पिता का ही रहता है। माता-पिता बच्चों का केवल पालन-पोषण करते हैं और उन्हें थोड़ी-सी बातें समझाते हैं; किन्तु उन्हें अधिक शिक्षित

और सुसभ्य बनाने वाला तो राष्ट्र और समाज ही है। राष्ट्र और समाज की ओर से जहाँ अनेकों कानून रहते हैं, वहाँ एक ओर ऐसे भी मानवी विधान होने चाहिये, जिनके अनुसार बालकों का पढ़ना-लिखना, शिल्प-कला सीखना और व्यायाम करना अनिवार्य-सा हो। बालकों के लिए ऐसे विधान जिस देश में हैं, वहाँ के बालक अधिक शिक्षित और सभ्य होते हैं। संसार के सामने युवक होकर आने पर उनके सामने यह प्रश्न नहीं आता कि हम क्या करें और किस ओर जायँ? उनका हृदय शिक्षा से भरा रहता है। उनका मस्तिष्क जीवनोपयोगी बातों से प्रभावित रहता है। वे उसके बल पर ऐसे काम में लग जाते हैं, जिससे उनके कल्याण के साथ-ही-साथ उनके समाज और राष्ट्र का भी कल्याण होता है। हमारे देश और समाज को भी उन्हीं राष्ट्रों का अनुकरण करना चाहिये।

आज समाज के अन्दर हाहाकार मच रहा है। राष्ट्र अशान्ति और असन्तोष से छटपटा रहा है। लाखों शिक्षित नवयुवक भी, हड्डी का दुबला ढाँचा लिये हुए दस-दस रुपयों की नौकरियों के लिए सड़कों पर घूमते दिखाई देते हैं। करोड़ों बच्चे प्रतिदिन भूख की ज्वाला से छटपटाकर अपने प्राणों के तन्तुओं को तोड़ रहे हैं। हजारों स्त्रियाँ फटे-पुराने चिथड़े पहने हुए दर-दर मुट्ठी भर अन्न के लिए पुकार मचा रही हैं। यह सब समाज और राष्ट्र का अपराध है। राष्ट्र ने स्वयं अपने को पंगुल बना दिया है। समाज

ने स्वयं अपने हाथों से इस असन्तोष की नींव डाली है। यदि समाज के द्वारा बालकों की सत-शिक्षा का प्रबन्ध होता; यदि उनके माता-पिता पर नियन्त्रण रखकर बालकों को योग्य और सुशिक्षित बनाये जाने का प्रयत्न किया जाता, तो समाज न आज असन्तोष से जलता और न राष्ट्र इतना जर्जर होता। चारों ओर शान्ति-ही-शान्ति दिखाई देती। प्रत्येक परिवार भलीभाँति सुखी और प्रसन्न रहता, जिस प्रकार कभी राम के राज्य में था! गोस्वामी जी की यह चौपाई उस समय की कितनी महत्ता प्रगट करती है। देखिये—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। राम-राज्य काहू नहीं व्यापा॥

क्या इससे यह प्रगट नहीं होता कि उस समय समाज के अन्दर सन्तोष था। वह पूर्ण प्रसन्न और संगठित था। वह इतना संगठित था कि दैविक शक्तियाँ भी उसका कुछ बिगाड़ने में असमर्थ-सी रहती थीं। क्या कारण था? क्या यह नहीं था कि समाज अपने बच्चों—बालकों की चिन्ता रखता था। उनके जीवन और उनके स्वास्थ्य की परवाह रखता था उनके विद्यार्थी-जीवन को उत्कृष्ट और सुन्दर बनाने में तन्मय रहता था। इसीसे तो राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न-जैसे वीर बालक उस समाज में पैदा हुए थे। इसीसे तो अपने महान् कार्यों से उन्होंने सारे संसार को चमत्कृत कर दिया था। इसलिए वर्तमान समाज और राष्ट्र का भी यह प्रधान कर्त्तव्य है कि वह अपने

सुधार के लिए अपनी गोद में पलनेवाले प्रत्येक बालक का यथासाध्य सुधार करे।

बालकों के प्रति यह तो समाज और राष्ट्र का कर्तव्य हुआ। पर, माता-पिता का कर्तव्य इससे भी गुरुतर और महान् है। बालकों को बनाने और बिगाड़ने का कार्य माता-पिता ही के ऊपर है। यदि माता-पिता चाहें तो बालक सुन्दर नागरिक बन सकते है। यदि वे चाहे तो बालक वहाँ सहज ही में पहुँच सकते हैं जहाँ पहुँचने से राष्ट्र और समाज का कल्याण होता है। प्राचीन काल में भारतवर्ष के स्त्री-पुरुष सुसभ्य और सुशिक्षित होते थे। उनका जीवन उन्नत और प्रभावशाली होता था। वे बालकों के जीवन की मर्यादा को भी भली भाँति समझते थे। इसी से वे सात-आठ वर्ष की ही अवस्था में बालकों को गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेज देते थे। और बालक वहाँ अपनी पच्चीस-छब्बीस वर्ष की अवस्था तक विद्याध्ययन में लगे रहते थे। उस समय तक वे पूर्ण ब्रह्मचारी रहते थे। किसी स्त्री का दर्शन तक भी उनके लिए मुश्किल था। जब वे पूर्ण विद्वान बन जाते थे तभी गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे।

किन्तु आज के माता-पिता ही भिन्न हैं। आज उनके अन्दर से वह मनोवृत्ति ही निकल गई है। आज वे बालकों के जीवन पर ध्यान नहीं देते और न उन्हें ब्रह्मचारी तथा संयमी बनाने का उद्योग करते हैं। यदि उद्योग करने के नाते कुछ करते हैं तो केवल इतना

ही कि उनका लड़का कालेज की ऊँची डिगरियाँ प्राप्त कर किसी सम्माननीय पदपर नियुक्त हो जाय। बस, केवल यही एक उनकी अभिलाषा रहती है। वे उन के जीवन की प्रत्येक बातों की उपेक्षा कर केवल अपने इसी स्वार्थ-सिद्धि की ओर ध्यान देते हैं। परिणाम यह होता है कि वे माता-पिता की उपेक्षा के कारण दुराचारी और लम्पट बन जाते हैं। अनेक बुराइयाँ उनके शरीर में समा जाती हैं। वे असमय ही अपने शरीर की सार-वस्तु को पानी की तरह बहाने लगते हैं। उनके शरीर का तेज और साहस जाता रहता है। शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। चारों ओर से रोगों का आक्रमण होने लगता है। तपेदिक और राज-यक्ष्मा रोग उनके शरीर में घुन की तरह लग जाते हैं। और वे थोड़े ही दिनों में अपने जीवन की लौकिक-लीला समाप्त कर इस संसार से चल बसते हैं।

माता-पिता की इसी थोड़ी-सी असावधानी का यह घातक परिणाम होता है। आज करोड़ों नवयुवक इसी भाँति निकम्मे और निःसार बनकर प्रति सप्ताह इस संसार से विदा हो रहे हैं। उनके जीवन से इस संसार को क्या लाभ हुआ? उनसे मानव-समुदाय का क्या उपकार हो सका? क्या वे इसीलिए संसार में आये थे कि अपने शरीर के तेज को नष्ट कर असमय में ही इस संसार से विदा हो जायँ? नहीं, उनके आने का एक महत् उद्देश्य था। पर, माता-पिता की असावधानी के कारण वे उस उद्देश्य

तक पहुँच न सके। और बीच में ही अपने भयंकर पाप के भारों से दबकर जहन्नुम में चले गये। न तो उनके माता-पिता की अभिलाषा पूरी हुई और न वे अपने मानव-जीवन ही का कुछ विकास कर सके। हाँ, इतना अवश्य किया कि अपने काले कारनामों का एक बहुत बड़ा भार पृथ्वी माता की छाती पर रख दिया। यदि पृथ्वी माता, मन-ही-मन उस बोझ से दबकर आँसू बहाती हो तो आश्चर्य ही क्या ?

संगति

बालक अनभिज्ञ होते हैं। वे यह नहीं जानते कि किसका साथ अच्छा और किसका बुरा है। स्कूल तथा कालेजों में उनका प्रति दिन सैकड़ों बालकों का साथ हुआ करता है। नित्य वे सैकड़ों बालकों के साथ हँसते-बोलते और बातें किया करते हैं। बहुधा यह देखा जाता है कि छोटे-छोटे बालकों तक में कभी-कभी काम की इच्छा जागृति हो जाती है। कालेज और ऊँचे दर्जे के तरुण बालकों की तो बात ही दूसरी होती है। उस समय वे क्या करते हैं ? यद्यपि वे काम-विज्ञान को नहीं जानते; किन्तु प्रकृति की ओर से दी हुई इन्द्रियाँ उन्हें उसका ज्ञान बता देती हैं और वे आपस में अपनी इन्द्रियों को रगड़ते तथा मलने लगते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनकी यह प्रकृति धीरे-धीरे प्रबल होती जाती है। और उनमें अनेकों दुर्गुण तथा काम-वासना वाली भावनाएँ भर जाती हैं। आज ऐसे अनेकों बालक पाये जायँगे

जो अपनी काम-पिशाची प्रकृति के कारण अपने हाथों ही अपना सत्यानाश कर रहे हैं। ऐसे बालक शौकीन, उच्छृङ्खल और बहुधा एकान्त-प्रेमी हुआ करते हैं। पढ़ने-पढ़ाने में तो उनका चित्त कभी लगता नहीं। वे एक-एक दर्जे में तीन-तीन चार-चार वर्ष तक पड़े रहते हैं। मुख की कान्ति और शरीर का सम्पूर्ण साहस नष्ट हो जाता है। जवानी में ही बुढ़ापा आ घेरता है। और एक दिन वे अपने माता-पिता की इच्छाओं को धूल में मिलाकर इस संसार से चल बसते हैं।

ऐसे बालक अपना यह व्यापार किसी हालत में माता-पिता के ऊपर प्रगट नहीं होने देते। वे उनकी तथा अपने शिक्षकों की आँखों से बचने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु जिन माता-पिताओं के वे कलेजे के टुकड़े हैं; जिनकी सारी आशाएँ उन्हीं पर अवलम्बित हैं, उनका क्या यह कर्तव्य नहीं है कि वे बालकों को दुश्चरित्र होने से बचावें? जब वे देखें कि बालक पुष्ट भोजन पाने पर भी मुर्झाया जा रहा है, उसकी आँखें पीली और पलकें नीचे धँसी जा रही हैं, पीठ की रीढ़ें; साफ-साफ ऊपर दिखाई दे रही हैं, तो इनके मूल कारण का पता लगाना क्या उनका कर्तव्य नहीं है? वे तनिक भी सतर्क होकर काम लें एवं लुक-छिपकर बालक के दैनिक आचरणों तथा उससे मिलने-जुलनेवालों पर ध्यान दें तो इसमें सन्देह नहीं कि सारा रहस्य खुल जाय और वह सुकुमार बालक आग की भट्ठी में झुलसने से बच जाय।

किन्तु माता-पिता इस पर ध्यान नहीं देते। और बालक कुसङ्ग में पड़कर अपना सब कुछ चौपट कर डालता है। संसार में कुसङ्ग ही तो अनर्थ की जड़ है। इसीसे वे अवस्थाएँ पैदा होती हैं जिनसे मनुष्य संसार में लांछित और अपमानित होता है। यही नहीं, कभी-कभी उसे बड़े कष्टों का सामना करना पड़ता है। जेलों में जाना पड़ता है। फाँसी की तख्तियों पर झूलना पड़ता है। किसी ने कहा है—

वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।

'प्राणों का त्याग देना अच्छा है; किंतु नीचों का सम्पर्क बहुत घातक है।' वास्तव में बात ऐसी ही है। सारी मनुष्यता नष्ट हो जाती है। न मान-मर्यादा का ध्यान रहता है और न अपने कुल-कानि की। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कहा है—

बरु भल बास नरक कर ताता।
दुष्ट सङ्ग जनि देइ विधाता।

अब इससे बढ़कर दुष्ट-सङ्गति के सम्बन्ध में दूसरा क्या कहा जा सकता है? दुष्टों की सङ्गति, इसमें सन्देह नहीं—नर्क से भी बुरी है। इसलिए बालकों को कभी बुरी सङ्गति में न पड़ने देना चाहिये। यदि माता-पिता अपने बालकों का सुधार करना चाहते हैं, यदि वे उन्हें उन्नति के प्रकाश में लाकर मनुष्य बनाना चाहते हैं तो कभी उन्हें बुरे लोगों के साथ में न बैठने देना चाहिये। इसके प्रतिकूल सत्सङ्ग करने के लिए बालकों को उत्साहित करना

चाहिये। सत्सङ्ग में बैठने-उठने से अनेकों लाभ होते हैं। श्रीशङ्कराचार्य ने सत्सङ्ग के सम्बन्ध में कहा है—

सत्सङ्गत्वं निःसंङ्गत्वं सङ्गत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलत्वं निश्चलत्वे जीवन्मुक्तः॥

"अर्थात् सत्सङ्ग से निःसङ्ग की प्राप्ति होती है। निःसङ्ग से विषय से अप्रीति बढ़ती है। निर्मोह से सत्य का पूर्ण आभास होता है। और सत्य के पूर्ण ज्ञान से मनुष्य को मुक्ति मिलती है।" एक दूसरे स्थान पर सत्सङ्ग की महिमा और लिखी हुई है—

सत्सङ्गः परमं तीर्थं सत्सङ्गः परमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्सङ्गं सततं कुरु॥

"अर्थात सत्सङ्ग ही परम तीर्थ है। सत्सङ्ग ही उत्कृष्ट पद है। इसलिए सबका परित्याग कर मनसा, वाचा एवं कर्मणा से सत्सङ्ग की सेवा करो।" यह सत्सङ्ग की महिमा है। फिर भला यदि माता-पिता बालकों को सत्सङ्ग में रहने का उपदेश न दें तो उनकी अज्ञानता नहीं तो और क्या है?

मादक वस्तु

मादक-वस्तुएँ नशीली होती हैं। वैद्यक में उनकी परिभाषा इस प्रकार की गई है—

बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारितदुच्यते।

"अर्थात जिस वस्तु से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो, उसे मादक-वस्तु कहते हैं।" वैद्यक का यह कथन बिल्कुल सत्य है। मादक-वस्तुओं

के सेवन से मनुष्य की बुद्धि का उन्मूलन हो जाता है। उसकी चेतना बिगड़ जाती है। इन्द्रियाँ अधिक लोलुप बन जाती हैं। शरीर की शक्ति जाती रहती है। यही नहीं, बल्कि वह मादक-वस्तुओं का प्रेमी बनकर संसार के किसी काम का नहीं रह जाता।

मादक-वस्तुओं का आजकल देश में असीम प्रचार है। ऐसा कोई भी शहर और गाँव नहीं, जहाँ गाँजे, तम्बाकू और अफियून की धुआँ-धार खपत न होती हो। आठ आने पैदा करनेवाला एक मजदूर भी सायङ्काल में गाँजा की दम लगाता है। गाँजा और चरस की भाँति ही भाँग का अत्यधिक प्रचार है। तम्बाकू का तो घर-घर में प्रचलन है। कुटिया से लेकर महलों तक इसका निवास है। एक ओर जहाँ अशिक्षित वर्ग गाँजा, भाँग और अफियून में मस्त हैं, वहाँ दूसरी ओर एक समुदाय सिगरेट और बीड़ियों का शिकार है। तम्बाकू की भाँति बीड़ी का भी भारतवर्ष के कोने-कोने में प्रचार है। छोटे-छोटे बच्चे तक इसे मुँह में लगाते तथा इसका धुआँ बाहर निकालते हुए देखे जाते हैं। भारतवर्ष की मादक-वस्तुओं और उनके बेहद-प्रचार के सम्बन्ध में लिखते हुए एक सभ्य अंग्रेज ने लिखा है—'संसार की मृत्यु-संख्या पर जब हम नजर डालते हैं तो भारत को सबसे आगे बढ़ा हुआ देखकर हमें आश्चर्य होता है। किंतु जब हम भारत के कोने-कोने में नशीली-वस्तुओं का प्रचार और छोटे-छोटे बच्चों तक को उसका शिकार होते हुए देखते हैं तो मेरा यह आश्चर्य दुःख के रूप में बदल जाता है। यदि मैं

सत्य कहूँ, तो मुझे निःसंकोच संसार के सामने कहना पड़ेगा कि इस समय संसार के सभी देशों से भारत नशीली-वस्तुओं के सेवन में आगे बढ़ा हुआ है। इसीसे भारतवासी परतंत्र एवं अत्यन्त कमजोर हो गये हैं।

वास्तव में भारत का सर्वनाश इन्हीं नशीली वस्तुओं से हो रहा है। इन्हीं के द्वारा उसके अन्दर से वह शक्ति निकल गई है जिससे किसी राष्ट्र का विकास और कल्याण होता है। यह तो सभी जानते हैं कि संसार में ऐसी कोई मादक वस्तु नहीं जिसमें जहर का कुछ अंश न हो। इसीलिए प्राचीन भारतीय विज्ञानवेत्ताओं ने यह कह भी दिया है कि मादक वस्तुओं के सेवन से उसी प्रकार जीवन का धीरे-धीरे विनाश होता है जिस प्रकार तेल के अभाव में दीपक का प्रकाश कम होता जाता है। वास्तव में मादक वस्तुओं के सेवन से शरीर का वीर्य हत हो जाता है। जिस प्रकार ग्रीष्म का प्रचंड उत्ताप जल की सरिता को सुखा देता है, उसी तरह मादक वस्तुएँ वीर्य का सर्वनाश कर डालती हैं। यही कारण है कि मादक वस्तुओं के प्रेमी-मनुष्य, वीर्य और साहस के अभाव में राज-यक्ष्मा रोग के शिकार हो जाते हैं। हमने अपने इतने जीवन-काल में किसी भी गाँजा और चरस-प्रेमी मनुष्य को ऐसा नहीं पाया जिसे भयंकर खाँसी न आती हो और जिसके गले से विदूषित मल न गिरता हो। साधुओं को यह खुल्लम-खुल्ला कहते हुए सुना है कि हम

नशीली वस्तुओं का इसलिए अधिक सेवन करते हैं जिससे हमारे वीर्य का विनाश हो। बिलकुल सच! मूर्ख और अनपढ़ साधुओं का यह विज्ञान सत्य से खाली नहीं।

किन्तु फिर भी हम इस ओर ध्यान ही नहीं देते। मादक वस्तुओं के इस विघातक परिणाम को जानकर भी हम उनसे प्रेम करते हैं। हमीं नहीं; हम अपने छोटे-छोटे बच्चों तक को उनसे प्रेम करते हुए अपनी आँखों से देखते हैं। आज भारत का ऐसा कोई सौभाग्यशाली लड़का नहीं, जो इन नशीली वस्तुओं से अपना पिण्ड छुड़ा सका हो? ऐसा कोई भी घर नहीं, जहाँ सिग-रेट-बीड़ी का धुआँ-धार प्रचार न हो? अमीर क्या गरीब सभी के सुकुमार बालक इस दुर्व्यसन की अग्नि में अपनी शक्तियों का स्वाहा करते हुए देखे जाते हैं। पर, यह किसका दोष है? बालकों या उनके माता-पिता का? जब माता-पिता ही व्यसनी हैं, जब वे ही गाँजा-भाँग, चरस और बीड़ी-सिगरेटों के प्रेमी बने हुए हैं तो उनकी गोद में पलनेवाले बच्चे क्यों न बनें? बच्चे तो माता-पिता ही का अनुकरण करते हैं। जैसा माता-पिता करेंगे, वैसा ही बच्चा भी करेगा। और यदि बालक अपने असमय काल ही में इन वस्तुओं का प्रेमी बन जाय तो फिर क्या उसका विकास होगा और क्या वह राष्ट्र का कल्याण कर सकेगा? इसलिए माता-पिता का कर्तव्य है कि वे बालकों को दुर्व्यसनी होने से बचावें। जब वे देखें कि बालक किसी मादक वस्तु की दूकान पर खड़ा

है अथवा ऐसे मनुष्य से प्रेमपूर्वक बातें कर रहा है, जो मादक-वस्तुओं का प्रेमी है, तो वे उस पर नियन्त्रण रखना शुरू कर दें। इसके अतिरिक्त वे बालक को इतना पैसा न दें कि वह उनसे छिप-कर बाजार में उन वस्तुओं का सेवन कर सके। इससे बालक के जीवन का कल्याण हो सकेगा। वह संयमी और ब्रह्मचारी बनकर अपने को गौरवान्वित कर सकेगा। उसकी ज्ञान-शक्तियाँ भी ठीक रहेंगी। फिर उस समय वह जो कुछ करेगा, अच्छा और सराह-नीय करेगा। अतः प्रत्येक सन्तान-प्रेमी मनुष्य को चाहिये कि वह अपने बालकों को नशीली वस्तुओं के दुर्व्यसन से बचावे।

अधिक पैसे

बालकों का विनाश एक दूसरे ढंग से भी होता है। यह ढंग अमीरों के ही बालकों पर लागू होता है। प्रायः अमीरों के बालक ही अधिक बिगड़े पाये जाते हैं। और उन्हीं के विचारों तथा कृत्यों से समाज को भयंकर क्षति भी पहुँचती है। इसका एक प्रधान कारण है। वह कारण है बालकों के हाथ में अधिक पैसा देना। माता-पिता की ओर से ये पैसे केवल प्यार के ही कारण मिलते हैं; पर, बालक उनका दुरुपयोग करते हैं। वे उन पैसों से भोग-विलास की सामग्रियाँ तथा गन्दे विचार वाली पुस्तकें खरीदते हैं। बाजार के बने हुये चटपटे और मिठाइयाँ भी खाते हैं। इससे उनका मस्तिष्क बिगड़ जाता है। वे दुराचारी और व्यभिचारी बन जाते हैं। उनमें ऐसे-ऐसे घृणित विचारों के रोग

समा जाते हैं जो उनका विनाश ही करके छोड़ते हैं। इस स्थान पर हमें एक रूसी कहानी याद आ गई। एक लड़का था। लड़का अमीर का था। पिता अपने बेटे की जेब सदैव पैसों से भरे रहता था। एक दिन लड़का बाजार में निकला। उसकी दृष्टि एक सुन्दरी लड़की पर पड़ी। वह उस पर मोहित हो गया। वह लड़की वेश्या की थी। लड़का उसके पास आने-जाने लगा। इसी दुर्व्यसन में बाप के मर जाने पर वह पूर्ण भिखारी हो गया। उसने लिखा है—'मेरे सर्वनाश के कारण मेरे पिता हैं। यदि मेरे पिता मुझे इतने पैसे न देते तो मैं कभी भी भिखारी न होता।' वास्तव में अधिक पैसे पास में रहने से बालकों की प्रकृति बिगड़ जाती है। वे दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं। अतः यदि माता-पिता बालकों का कल्याण चाहते हैं तो वे उनके हाथों में अधिक पैसा भूल कर भी न दें।

५—वीर्य की उत्पत्ति

वीर्य से शरीर का घनिष्ट सम्बन्ध है। इतना ही नहीं, वरन् यह कहना अधिक संगत होगा कि वीर्य ही पर शरीर की दुनिया बसी हुई है। उसीके ऊपर उसका महान् अस्तित्व आबाद है। यदि शरीर से वीर्य नाम का पदार्थ निकल जाय; यदि उसका तेजस्वी प्रभाव इस दुनिया से कूच कर जाय, तो शरीर

अस्तित्व-हीन हो जायगा। उसकी सारी शक्तियाँ क्षीण हो जायँगी। अतः जब हमारे शरीर के वीर्य का इतना प्रबल प्रभाव है; इतना महान् उसका अस्तित्व छिपा हुआ है तो हमें यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि वीर्य क्या वस्तु है? वह कब और कहाँ उत्पन्न होता है? कारण बिना उसे जाने हुए कोई कैसे उसकी अखंड महिमा को स्वीकार कर सकता है? कैसे यह निर्विवाद मान सकता है कि वास्तव में वीर्य ही हमारे शरीर का निष्कर्ष और सार है।

इस संसार में हमारे लिए अनेकों प्रकार की सामग्रियाँ बनी हुई हैं। उनमें से प्रत्येक का हम अपने जीवन में उपयोग करते हैं। कुछ तो हमारे शरीर ढँकने तथा जीवन-सम्बन्धी अन्य उपयोगी आवश्यकाओं की पूर्ति के काम में आती हैं। और कुछ ऐसी हैं, जिन्हें खाकर हम अपने शरीर का पोषण करते हैं। ये खाद्य-सामग्रियों के नाम से सारे संसार में प्रख्यात हैं। संसार के प्रत्येक प्राणी का इन्हीं के द्वारा काम चलता है। प्रति दिन इन्हीं से प्रत्येक मनुष्य का काम पड़ता है। मनुष्य इन्हीं के उपार्जन के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। यह जो संसार में चहल-पहल दिखाई दे रहा है; यह जो चारों ओर अशान्ति और कार्य-आकुलता की ध्वनि उठ रही हैं, वह सब इन्हीं भोजन सामग्रियों के लिए। इन्हीं के लिए मजदूर; धूप और शीत में काम करता है, तथा इन्हीं के लिए एक उच्च अधिकारी गद्देदार कुर्सियों पर बैठ

कर अपनी ड्यूटी बजाता है। सभी इन्हीं की प्राप्ति में व्यस्त हैं, आकुल हैं—परेशान हैं। इसका क्या कारण है? क्या भोजन के बिना प्राणी संसार में नहीं रह सकता? तथा उसके अभाव में वह अपने शरीर का अस्तित्व नहीं रख सकता? नहीं, भोजन ही से शरीर की शक्ति का निर्माण होता है। वीर्य ही उसका राजा, मालिक, बादशाह और अस्तित्व-रक्षक है। जब तक वीर्य है, तबतक शरीर है; उसमें साहस और तेज है। और यदि वीर्य नहीं तो कुछ नहीं। शरीर निःसार और अनन्त सम्पत्ति से भरा हुआ संसार केवल धूल के समान! इसीलिए प्राचीन शास्त्रकारों ने लिखा है कि मनुष्य को प्रति दिन ऐसा ही भोजन करना चाहिये जिससे उसके शरीर में शुद्ध और गुणकारी वीर्य का निर्माण हो।

हम प्रति दिन भोजन करते हैं। हमारा किया हुआ भोजन आमाशय में पहुँचता है। आमाशय का काम भोजन सामग्रियों को पचाना तथा उन्हें परिपक्व बनाना है। भोजन का जितना अंश परिपक्व हो जाता है, वह सब उदरस्थ एक छोटी-सी अँतड़ी में चला जाता है। इसी अतड़ी को पक्वाशय कहते हैं। भोजन में जो विदूषित पदार्थ होते हैं अथवा जो उससे तैयार होते हैं, पक्वाशय उन्हें मल तथा मूत्र के रूप में मलाशय और मूत्राशय में भेज देता है। इन विदूषित पदार्थों के अलग हो जाने पर पक्वाशय में केवल पवित्र रस रह जाता है। यही रस रुधिर का रूप धारण करता है। और उसे फिर जठराग्नि पकाती तथा

दूसरा रूप देती है। पक्वाशय का रस भी विकारहीन नहीं कहा जा सकता। उसमें भी विकार तथा मल का कुछ-न-कुछ अंश रह जाता है। मल के इस अंश को जलाकर जठराग्नि इसको बिलकुल साफ एवं शुद्ध बना देती है। यही रस पवित्र रक्त के रूप में परिणत होता है। रुधिर पकने के पूर्व, उस प्रथम रस के भी दो भाग हो जाते हैं। एक भाग सूक्ष्म और दूसरा स्थूल कहलाता है। सूक्ष्म-भाग तो रुधिर का रूप धारण करता है; पर स्थूल-भाग जठराग्नि द्वारा फिर पकाया जाता है। इसमें से फिर पित्त के रूप में मल बाहर निकलता है। पित्त के अलग हो जाने पर उस घने और शुद्ध किये हुए रस के फिर दो भाग बनते हैं। एक सूक्ष्म तथा दूसरा स्थूल। सूक्ष्म भाग से मांस की बोटियाँ तैयार होती हैं और स्थूल भाग फिर जठराग्नि में पकता है। इस बार भी उसके शरीर के रोम-छिद्रों में बननेवाले मैल के रूप में मल बाहर निकलता है और शेष भाग चरबी का रूप धारण करता है। चरबी फिर जठराग्नि में पकती है और उससे पसीना इत्यादि के रूप में मल बाहर निकलता है। विकार दूर होने पर वह पुनः दो भागों में विभक्त होता है। एक भाग से हड्डियाँ बनती हैं और दूसरा भाग जठराग्नि में पककर मज्जा का रूप धारण करता है। मज्जा पुनः जठराग्नि में पकती है। उससे भी विकार बाहर निकलता है। और अब जो बच रहता है, वही वीर्य कहलाता है।

रसाद्रक्तं ततोमांसम् मांसान्मेदः प्रजायते ।
मेदास्यास्थि ततोमज्जा मज्जायाः शुक्रसम्भवः ॥—सुश्रुत

अर्थात् मनुष्य जो कुछ खाता है उससे एक प्रकार का रस तैयार होता है। रस से मांस, मांस से मेदा, मेदा से मज्जा और मज्जा से वीर्य की उत्पत्ति होती है।

हमारा शरीर यंत्र का भंडार-सा है। उसमें अनेकों कल पुर्जे प्रति दिन काम करते हैं। उनमें से प्रत्येक के अलग-अलग स्थान और काम भी हैं। प्रत्येक यंत्र नियमित रूप से प्रति दिन अपना काम करता रहता है। हमारे भोजन सामग्रियों को पचाना, उनका रस निर्माण करना, उन्हें मांस और हड्डियों के रूप में बाँटना तथा उन्हें मज्जा और वीर्य का रूप देना ही उनका काम है। यह काम, हमारे कार्यों की तरह प्रति दिन होता रहता है। प्रति दिन हमारे शरीर में रुधिर और वीर्य का कुछ-न-कुछ अंश तैयार होता रहता है। अगर ऐसा न होता तो हमारा शरीर न टिका रहता। पर, ऐसा नहीं होता कि हम आज जो भोजन करते हैं, उसका आज ही रुधिर और वीर्य बन जाता है। शरीर-शास्त्र के ज्ञाताओं ने बड़ी खोज के बाद इस सम्बन्ध में पता लगाकर यह निश्चय किया है कि हम जो भोजन करते हैं, उसका तीस दिनों के बाद वीर्य बनता है।

वीर्य के सम्बन्ध में पश्चिमीय विद्वानों की सम्मति—

वीर्य-उत्पत्ति के सम्बन्ध में संसार के विद्वानों के विभिन्न मत

हैं। इन मतों में तीन ही राष्ट्रों के विचार प्रधान और मुख्य माने जाते हैं। भारतीय, यूनानी और पश्चिमीय। भारतीय विद्वानों के विचारों का उल्लेख ऊपर हो चुका है। अब यहाँ हम यह दिखाएँगे कि इस सम्बन्ध में पश्चिमीय विद्वान क्या कहते हैं। यूनानी विचारों में अत्यन्त जटिलता और क्लिष्टता है। उनसे किसी प्रकार का उपकार भी नहीं हो सकता। अतः उनको यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। पश्चिमीय विद्वानों की धारणा की है कि मनुष्य के शरीर के निम्न भाग में दो अण्डकोष होते हैं। इन अण्डकोषों से दो प्रकार के विकार उत्पन्न होते हैं। एक वाहरी और दूसरा भीतरी। यही मल वीर्य कहलाते हैं। इन दो तरह के वीर्यों का भिन्न-भिन्न काम है। भीतरी वीर्य शरीर के प्रत्येक अंगों में संचरण करता है। और उससे शरीर में कान्ति, तेज, साहस और शक्ति उत्पन्न होती है। इसी से हमारी आँखों में ज्योति आती है एवं शरीर सुडौल होता है। यह भीतरी वीर्य, भीतर-ही-भीतर निरन्तर अपना काम करता है। यदि यह नष्ट हो जाता है तो फिर शरीर का विकास रुक जाता है। अपने इस विचार को पुष्ट करते हुए पश्चिमीय शास्त्रकारों ने लिखा है कि बालक-बालिकाएँ जब अपनी शैशवावस्था को पार कर युवा अवस्था में प्रवेश करते हैं तो अपने ही आप उनके शरीर की कान्ति बढ़ने लगती है। उनका उत्साह दूना हो जाता है। अंग-अंग में जीवन संचरण करने लगता है। यह केवल भीतरी वीर्य

का महत्त्व है। इस सम्बन्ध में सबसे उत्कट उदाहरण जो उन्होंने दिया है, वह उन जानवरों का है जो वधिया कर दिये जाते हैं। उनका कथन है कि उनके अण्डकोषों को क्रियाहीन बना देने ही से उनके शरीर का विकास रुक जाता है। ऐसे जानवरों में घोड़ा बैल, बकरे और कुत्ते इत्यादि हैं। ऐसे जानवर किसी काम के नहीं रह जाते। उनके शारीरिक विकास की गति बन्द हो जाती है। यह सब केवल भीतरी वीर्य के अभाव में होता है। अण्डकोष का दूसरा मल, वाह्य वीर्य के नाम से विख्यात है। इसमें वीर्य के छोटे-छोटे कीटाणु मिले हुए रहते हैं। और उनमें जीव उत्पन्न करने की शक्ति होती है। यह भी शरीर में शक्ति और जीवन का सञ्चार करता है। चाहे जो हो, पर प्रत्येक देश के विचार-शील विद्वान यह निःसंकोच स्वीकार करते हैं कि वीर्य शरीर का निष्कर्ष है। उससे जीव-तत्वों का विकास होता है।

वीर्य में कौन-कौन वस्तुएँ मिली रहती हैं?

वीर्य अनेक वस्तुओं का सम्मिश्रण है। उसमें अपने उचित परिमाण के साथ कई वस्तुएँ मिली रहती हैं। रसायन-शास्त्र के पण्डितों का कथन है कि वीर्य में तीन प्रतिशत आक्साइड आफ परोटिन, व चार प्रतिशत स्नेह, पाँच प्रतिशत फास्फेट आफ लाइम, क्लोराइड आफ सोडियम, कुछ फास्फेड और कुछ फास्फोरस है। उसमें अस्सी और सत्तर भाग तक जल भी मिला रहता है। इनके अतिरिक्त और अनेकों पदार्थ भी वीर्य में पाये जाते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि वीर्य में छोटे-छोटे कीटाणु होते हैं और इन कीटाणुओं में ही जीवनी शक्ति होती है। ये कीटाणु बहुत छोटे होते हैं। आँखों से ये कभी दिखाई नहीं देते। आधुनिक शरीर-शास्त्र-वेत्ताओं ने सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रों से इन कीटाणुओं का पता लगाकर इनके ये नाम रक्खे हैं—

१—सारमेटोजा

२—सेमिनल एनेमल्क्यूल्स

३—सेमिनल फिलेमेन्ट

४—जूस्पर्मस

५—स्परमेटो जोएडस्।

पश्चिमी डाक्टरों ने इन वीर्य-जन्तुओं के सम्बन्ध में बड़ी ज्ञातव्य बातें मालूम की हैं। एक यूरोपीय डाक्टर ने इन वीर्य-जन्तुओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि पुरुष के वीर्य में बसनेवाले कीड़े $\frac{१}{७००}$ इंच के बराबर होते हैं। काह्निकर नामक एक डाक्टर ने इनका आकार $\frac{१}{६००}$ इंच का भी बताया है। उक्त डाक्टर महोदय का कहना है कि वीर्य में रहनेवाले जन्तु दुमदार होते हैं। उनकी दुम का अगला हिस्सा गोल होता है। वे सजीव प्राणी ही की भाँति होते हैं। वे चलते-फिरते तथा दौड़ते भी हैं। जिस प्रकार छोटी और नन्हीं-नन्हीं मछलियाँ पानी में तैरा करती हैं उसी प्रकार वीर्य के जन्तु भी वीर्य में संतरण किया करते हैं। जिस तरह वीर्य-कोष में ऊष्णता रहती है; यदि उसी ऊष्णता

के परिमाण की शीशी में ये वीर्य-जन्तु बन्द कर दिये जायँ तो वे चौबीस घंटे से लेकर बहत्तर घंटे तक जीवित रह सकते हैं। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि आदमी मर गया है और उसके वीर्य में बसनेवाले जन्तु उसकी मृत्यु के चौबीस घंटे बाद तक जीवित रहे हैं।

वीर्य-जन्तुओं की आकृति के सम्बन्ध में इन्हीं डाक्टरों ने लिखा है कि उनका सिर चपटा और कुछ लम्बा तथा गोल होता है। सिर के पास ही उनकी पूँछ होती है। पूँछ लम्बी तथा पतली-सी होती है। सिर की लम्बाई-चौड़ाई प्रायः १/१०००० इञ्च के बराबर होती है। पूँछ किसी की १/५००० इंच और किसी की १/४००० इञ्च के बराबर होती है। पूँछ के सहारे ही वे चलते-फिरते तथा दौड़ते हैं। उनकी यही शक्ति उन्हें गर्भाशय में ले जाती है। और उससे जीव की उत्पत्ति होती है। जिन पुरुषों के वीर्य में ये जन्तु नहीं होते, उनमें सन्तानोत्पादन की शक्ति नहीं रहती।

वीर्य कैसा रहता है ?

वीर्य सम्पूर्ण शरीर का प्राण है। उससे ही शरीर का विकास होता है। जिस प्रकार प्रति मिनट सारे शरीर में रुधिर का संचरण होता रहता है, उसी प्रकार वीर्य भी हमारे शरीर में सब जगह फैला हुआ है। वैद्यक में कहा गया है कि—

> यथा पयसि सर्पिस्तु गूढश्चेक्षौरसो यथा।
> एवं हि सकलेकाये शुक्रं तिष्ठति देहिनाम्॥

जैसे दूध में घी और ईख में रस गुप्त रूप से रहता है उसी प्रकार प्राणियों के शरीर भर में वीर्य रहता है। वास्तव में बात ऐसी ही है। किन्तु अनेक अज्ञानी मनुष्यों की यह मिथ्या धारणा है कि वीर्य केवल एक ही स्थान में है और उस स्थान में वीर्य का एक कुंड-सा भरा रहता है। इसीलिए वे अपने शरीर के इस निष्कर्ष को पानी की भाँति बहाया करते हैं। उनका कहना है कि वीर्य इसीलिए है ही। यदि वह निरन्तर शरीर से न निकाला जाय तो उससे शरीर को क्षति होगी और वीर्य स्वयं अपने आप स्वप्न-दोष में बाहर निकल जायगा। इस विचारवाले मदान्ध पुरुषों के जीवन का कभी विकास नहीं होता। वे अधिक बलवान और शक्तिवान भी नहीं होते। भला उन अज्ञानियों को कौन समझाये कि कहीं शक्ति का पुंज भी शरीर को शक्ति-हीन बनाता है? शरीर में तो जितना ही वीर्य रहेगा, वह उतना ही शक्तिशाली और सुदृढ़ रहेगा। जिस प्रकार शरीर की बलिष्ठता के लिए प्रत्येक अंगों में रुधिर का होना आवश्यक है उसी प्रकार वीर्य का होना भी आवश्यक है। यदि वीर्य एक ही स्थान पर होता अथवा उसका होना एक ही स्थान के लिए आवश्यक होता तो फिर उसके अभाव में अथवा उसकी विकृत अवस्था में केवल उसी स्थान को क्षति पहुँचनी चाहिये, जहाँ उसका रहना अत्यन्त आवश्यक है। पर, ऐसा नहीं होता। वीर्य के अभाव में सारे शरीर को धक्का पहुँचता है। शरीर

का प्रत्येक अंग विकास की सम्पत्ति से वंचित हो जाता है। इससे यह विदित होता है कि वीर्य शरीर के एक स्थान में न रहकर सम्पूर्ण शरीर में फैला रहता है।

वीर्य कब पकता है ?

मनुष्य प्रतिदिन भोजन करता है। यदि प्रति दिन के किये भोजन का तुरन्त रस तैयार हो जाय और वह फिर क्रम-क्रम से उसी दिन वीर्य के रूप में परिणत हो जाय तब तो शरीर के अन्दर वीर्य का सागर-सा लहराने लगे। पर ऐसा नहीं होता। महामान्य भोज ने लिखा है—

धातौ रसादौ मज्जान्ते प्रत्येके क्रमतो रसः।
अहो रात्रात्स्वयं पंच, सार्धं दण्डं च तिष्ठति॥

रस से लेकर मज्जापर्यन्त प्रत्येक धातु पाँच रात-दिन और डेढ़ घड़ी तक अपनी अवस्था में रहती है। इसके पश्चात् वीर्य बनता है। अर्थात तीस दिन-रात और ९ घड़ी में रस से वीर्य का निर्माण होता है। प्राचीन आयुर्वेदाचार्य सुश्रुत ने भी लिखा है कि—

एवं मासेन रसः शुक्रो भवति पुंसां स्त्रीणांचार्तव मिति।

अर्थात् यह रस एक महीने में पुरुष के शरीर में वीर्य और स्त्री के शरीर में रज के रूप में बनकर तैयार होता है। किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि वीर्य इस समय के आगे-पीछे भी पक जाता है। इस सम्बन्ध में केवल शक्ति का आधार लिया

जा सकता है। जिस मनुष्य के शरीर में जितना बल होगा, जिसकी पाचन-शक्ति जितनी तीव्र होगी, उसका वीर्य उतना ही अल्प काल में पकेगा। अशक्त और निर्बल मनुष्यों का वीर्य एक महीने से भी अधिक समय में पकता है। परन्तु वीर्य के पकने का वास्तविक काल एक महीना ही है। और यही वीर्य सर्वोत्तम तथा गुणकारी होता है। इस वीर्य के कुछ सद्‌गुण एक वैद्यक ग्रन्थ के अनुसार इस तरह हैं—

१—एक मास या इससे कुछ अधिक काल में जो वीर्य या रज उत्पन्न होता है, उसमें जीवन-शक्ति प्रचुर परिमाण में भरी रहती है।

२—ऐसे वीर्य या रज को गर्भधारण के अतिरिक्त और किसी दुर्गुण में विनष्ट न करना चाहिये।

३—ऐसा वीर्य और रज यदि शरीर में सदा बने रहे तो सर्वोत्तम है। उसे बाहर तभी निकालना चाहिये जब कि अत्यन्त आवश्यकता हो।

४—ऐसे वीर्य से शरीर का विकास होता है। उसमें तेज कान्ति, साहस और शक्ति आती है।

५—चेतना ठीक रहती है। हृदय में ओज का परिमाण बढ़ता है।

ओज क्या वस्तु है?

मानव-शरीर के अन्दर एक पदार्थ का निवास रहता है।

यह पदार्थ प्रत्येक स्त्री-पुरुष के हृदय में रहता है। यह वह पदार्थ है जिससे जीवन 'जीवन' पद को सार्थक करता है; जिससे मनुष्य की आकृति, मनुष्य का शरीर, मनुष्य की आँखें और मनुष्य का प्राण भी एक अद्भुत ज्योति से जगमगाया करता है; उसीको शरीर-शास्त्र के वेत्ताओं ने ओज के नाम से सम्बोधित किया है। इसी ओज के सम्बन्ध में एक जर्मन डाक्टर ने लिखा है कि मानव-शरीर में वीर्य से बढ़कर एक सर्वोत्तम और गुणद पदार्थ पाया जाता है। इस पदार्थ का निर्माण मनुष्य के उस वीर्य से होता है जो उसके शरीर का सार तत्त्व कहा जाता है। जिस मनुष्य के शरीर का वीर्य शुद्ध और पवित्र होगा तथा जिसमें वीर्य का जितना ही प्रचुर परिमाण पाया जायगा, उसमें ओज नाम का यह तात्त्विक पदार्थ भी उतना ही अधिक रहेगा। अतः प्रत्येक मनुष्य को ओज की रक्षा के लिए वीर्य की रक्षा करनी चाहिये।

वास्तव में ओज से मानव-शरीर के शक्ति की वृद्धि होती है; उसकी चेतना और उसके मस्तिष्क में बल उत्पन्न पैदा होता है। आयु-वृद्धि में भी सहायता मिलती है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस ओज के सम्बन्ध में कहा है—

> ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतं।
> यन्नाशे नियतं नाशो, यस्मिन्तिष्ठति जीवनम्॥

"अर्थात् ओज, रस से लेकर वीर्य तक धातुओं का सार रूप

तेज है, जिसके नष्ट होने पर कोई जीवित नहीं रह सकता। इसके रहने पर ही जीवन धारण किया जा सकता है।"

ओज, वीर्य का निष्कर्ष रूप है। जिस प्रकार वीर्य सम्पूर्ण शरीर में फैला रहता है, उसी प्रकार ओज भी हृदय से सारे शरीर में व्याप्त रहता है। योग चिन्तामणि में लिखा है—

ओजः सर्व शरीरस्थं स्निग्धं शीतं स्थिरं सितम्।
सोमात्मकं शरीरस्य बलपुष्टिकरं मतम्॥

ओज सम्पूर्ण शरीर में वास करता है। यह चिकना, शीतल, स्थिर और उज्ज्वल होता है। यह शरीर में तेज बढ़ानेवाला तथा बल को पुष्ट करनेवाला है।

'ओज' शब्द का अर्थ ही यह प्रगट करता है कि वह जीवन-तत्त्वों का सार रूप है। अतः यथासाध्य इस ओज की, प्रत्येक मनुष्य को रक्षा करनी चाहिये। जो संसार में महापुरुष बनने की अभिलाषा रखते हैं; जो अपने जीवन-कार्यों में सफलता प्राप्त कर संसार की परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं, उन्हें चाहिये कि सबसे पहिले अपनी काम-लोलुप इन्द्रियों पर निग्रह रखकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करें। ब्रह्मचर्य से वीर्य की रक्षा होगी और वीर्य-रक्षा से ओज में वृद्धि होगी। फिर न तो उन्हें रोगों का सामना करना पड़ेगा और न संसार की परिस्थितियाँ ही उन्हें भयभीत कर सकेंगी। वे एक प्रबल शक्तिशाली की भाँति संसार में अपनी महत्ता को सुरक्षित किये रहेंगे।

मनुष्य अपना विनाश अपने हाथों करता है। अपने हाथों से वह अपने लिए वह गड्ढा तैयार करता है, जिसमें गिरकर वह स्वयं चकनाचूर हो जाता और उसके बाल-बच्चों का प्रायः विनाश ही हो जाता है। प्रकृति की ओर से मनुष्य चैतन्य है। उसमें विचार करने की शक्तियाँ है। फिर यदि वह यह नहीं समझता कि उसके जीवन की रक्षा कैसे और किस प्रकार हो सकेगी तो दूसरे का क्या दोष ? यदि वह तनिक विचार से काम ले; किंचित् मानव-जीवन की महत्ता पर विचार करे तो उसे यह प्रत्यक्ष विदित हो जायगा कि शरीर-जीवन का दुर्ग इसी वीर्य पर टिका हुआ है। और इसीकी महत्ता अंग-प्रत्यंग में दौड़ रही है। अतः क्यों न वीर्य की रक्षा करें ? क्यों न अपने शरीर के ओज को बढ़ावें ? क्यों न ब्रह्मचारी बनकर अपने को शक्तिशाली बनावें। पर नहीं, वे ऐसा न सोच काम की भयंकर ज्वाला में अपने को विनष्ट कर डालते हैं। वीर्य और ओज को खाक में मिला देते हैं। फिर इसका परिणाम मृत्यु और जरा को छोड़कर और क्या हो सकता है ? कारण संसार में ब्रह्मचर्य ही जीवन और वीर्य-नाश ही मृत्यु है।

वीर्य-रक्षा

जब मानव-शरीर में वीर्य ही प्रधान वस्तु है; जब उसी का अखंड प्रताप उसमें समाया हुआ है, तो जो मनुष्य अपने वीर्य की रक्षा न करे, उससे बढ़कर इस संसार में और कोई मतिमन्द

नहीं हो सकता। संसार में सब वस्तुओं का मूल्य हो सकता है पर, वीर्य का नहीं। कोई दूसरी वस्तु खो जाने पर प्राप्त भी की जा सकती है, पर वीर्य का एक बूँद गिरा कर फिर उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। उस एक बिन्दु में रुधिर के सहस्रों बूँद समाये रहते हैं; कई महीनों के भोजन का निष्कर्ष समाया रहता है। यदि वीर्य का एक बूँद नष्ट हो गया तो समझिये शरीर का एक वह जौहर निकल गया, जिसके अभाव में शरीर का विनाश हो जाता है। अतः प्रत्येक विचारशील मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। इस सम्बन्ध में अमेरिका के एक विशेषज्ञ ने लिखा है—

"वीर्य शरीर का सार है। इसी के ऊपर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर करता है। मनुष्य-जीवन के गुणों का विकास भी इसी वीर्य से ही होता है। जिस मनुष्य के शरीर में वीर्य नहीं रहता उसमें न साहस रहता है, न शक्ति रहती है और न तेज ही होता है। वह मनुष्य संसार के किसी काम का नहीं होता।" इसी प्रकार डाक्टर गयोलूईस ने भी लिखा है—"जिस समाज का एक भी मनुष्य वीर्य का अपव्यय करता है, वह समाज दुश्चिन्ता और दुख की भावनाओं से भर-सा जाता है। कारण यह संक्रामक रोग है। और थोड़े ही दिनों में उस समाज में रहने वाले सभी मनुष्यों को अपना शिकार बना लेता है। इसलिए ऐसी विनाशकारी रीति का प्रत्येक समाज से बहिष्कार होना चाहिये।"

वीर्य-रक्षा से अनेकों लाभ होते हैं। जो वीर्य-रक्षा करता है, उस मनुष्य के कल्याण के साथ ही साथ उसके समाज और राष्ट्र का भी कल्याण होता है। वह अपने लिए इस लोक में तो स्थान रखता ही है, दूसरे लोक में भी वीर्य-रक्षा-द्वारा स्थान पाने का अधिकारी बनजाता है। किसी ऋषि का वचन है कि वीर्य-रक्षा संसार में सबसे बढ़कर तपस्या है। इससे आत्मा में ईश्वरीय ज्ञान जागृत होता है। मुक्ति की गुत्थियाँ सुलझाने में सहायता मिलती है। यहाँ हम वीर्य-रक्षा से होने वाले कुछ लाभों का सूक्ष्म-रूप में वर्णन कर रहे हैं।

१—वीर्य-रक्षा से संसार के गुरुतर और महान् कार्य भी साध्य तथा सरल बनाये जा सकते हैं।

२—ब्रह्मचर्य से तेज, शक्ति और आत्म-ज्ञान प्राप्त होता है।

३—जो मनुष्य संसार तथा अपने राष्ट्र की सेवा करना चाहे, उसे ब्रह्मचारी बनना चाहिये। ब्रह्मचर्य से हृदय में सेवा-वृत्ति का जागरण होता है।

४—हृदय की शुद्धता तथा पवित्रता के लिए ब्रह्मचर्य से बढ़कर कोई दूसरी औषधि नहीं।

५—ब्रह्मचर्य से हृदय पुष्ट तथा कर्तव्यनिष्ठ बनता है।

६—ब्रह्मचर्य से जीवन-शक्ति का विकास और उसमें स्फुरण आता है।

७—ब्रह्मचर्य से मस्तिष्क, स्थिर और विचारशील बनता है।

८—ब्रह्मचर्य ही मनुष्य के शरीर में सौन्दर्य, साहस और पवित्रता का मूल कारण है।

९—ब्रह्मचर्य से ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है।

१०—ब्रह्मचर्य से वासना की भावनाओं का विनाश होता है।

११—चित सदैव प्रसन्न और आह्लादित रहता है।

१२—एक ब्रह्मचारी सौ यज्ञ करनेवाले से श्रेष्ठ और प्रशंसनीय माना जाता है।

१३—वीर्य का एक-एक अणु जीवन-शक्ति से भरा रहता है। जो इसकी रक्षा करता है वह अपनी आयु-शक्ति बढ़ाता है।

१४—वीर्य की रक्षा करनेवाला पुरुष दीर्घजीवी होता है।

१५—वीर्य की रक्षा करनेवाले मनुष्य में ही सुन्दर सन्तान उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

१६—वीर्य शरीर का राजा है। इसके क्षीण हो जाने पर शरीर की सारी शक्तियाँ क्षीण और निस्तेज हो जाती हैं।

६—अप्राकृतिक मैथुन और उसके दोष

संसार में मैथुन क्रिया की व्यापकता को कोई रोक नहीं सकता। इससे संसार का विकास होता है। प्रकृति की शक्ति में सम्वर्धता होती है। परन्तु जिस प्रकार प्रकृति की ओर से अन्या-

न्य विषयों के लिए नियम और विधान बने हैं; उसी प्रकार मैथुन के लिए भी विधान और नियम हैं। जब हम इन विधानों का उचित रीति से पालन कर उसकी व्यापकता का मूल अर्थ समझ कर ही मैथुन में प्रवृत्त होते हैं, तभी हमें वह विकास और शक्ति प्राप्ति होती है, जिसके अन्दर प्रकृति का मूल उद्देश्य छिपा रहता है। अन्यथा मैथुन की प्रतिक्रिया के विपरीत जाने से शरीर रोगों का घर-सा बन जाता है। जीवन की सार्थकता नष्ट हो जाती है और असमय में ही मृत्यु तथा वृद्धता का सामना करना पड़ता है।

मैथुन से वीर्य का विनाश होता है। शरीर की शक्तियाँ क्षीण होती हैं। वह मनुष्य संसार में बड़ा ही भाग्यशाली है जो जीवन-पर्यन्त मैथुन से विलग रहकर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता है। प्रत्येक मनुष्य को ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना चाहिये। शास्त्रों में मैथुन के आठ प्रकार बतलाये गये हैं। प्रत्येक ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करनेवाले मनुष्य को इनसे बचने का उद्योग करना चाहिये। मैथुन के वे आठों भेद इस तरह हैं—

स्मरणं, कीर्तनं, केलिः प्रेक्षणं, गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः।
विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम्॥

इन आठों अर्थात् स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुप्त-भाषण, सङ्कल्प, अध्यवसाय और क्रिया निष्पत्ति की व्याख्या इस तरह है—

१—स्मरण—किसी चित्र अथवा किसी अन्यत्र स्थान में सौंदर्यमयी स्त्री को देखकर, उसके पश्चात् भी उसका बार-बार स्मरण करना।

२—कीर्तन—स्त्रियों के कामोत्तेजक अंगों का वर्णन तथा उनका यश गान करना। अश्लील गीतों में उनके रूप तथा सौंदर्य की प्रशंसा करना।

३—केलि—स्त्रियों के साथ खेलना, हँसना किलकना तथा उनसे मनोविनोद की बातें करना।

४—प्रेक्षण—किसी स्त्री को वासना की दृष्टि से देखना तथा लुक-छिपकर उसे देखने की धृष्टता करना।

५—गुप्त-भाषण—स्त्री के पास बैठना, उनके साथ उपन्यास और कहानियों के शृंगारी पात्रों पर वाद-विवाद करना तथा एकान्त में उनसे हँस-हँसकर बातें करना।

६—संकल्प—सिनेमा की किसी सुन्दरी अभिनेत्री, उपन्यासों की सुन्दरी नायिका या कुत्सित-भावों से पूर्ण चित्रों को देखकर उन्हीं की कल्पनाओं में निरंतर निमग्न रहना।

७—अध्यवसाय—किसी सुन्दरी; किन्तु अप्राप्य स्त्री की प्राप्ति के लिए बार-बार परिश्रम-पूर्वक प्रयत्न करना।

८—क्रिया-निष्पत्ति—किसी स्त्री के साथ प्रत्यक्ष-रूप से सम्भोग करना।

मैथुन के आठों प्रकार किसी भी ब्रह्मचारी को विनष्ट कर

सकते हैं। यदि मनुष्य इनसे अलग रहकर अपने मन की प्रवृत्तियों को संयम की डोरी से कसकर बाँधे रहे तो वह संसार में पूर्ण ब्रह्मचारी बन सकता है। किन्तु आज कल एक दूसरा ही विनाशक बवण्डर चल पड़ा है। हजारों-लाखों युवक-युवतियाँ इस बवण्डर के झोंके में पड़कर समुद्र के उस अगाध गर्त्त में गिर रहे हैं, जहाँ किसी का पता भी नहीं लगता। यही कारण है कि आज राष्ट्रीय शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हैं। सामाजिक बल आहत होकर रो रहा है। जब देश में पाप का बाजार गर्म है, जब समाज में स्त्री-पुरुष, नवयुवक और नवयुवतियाँ मैथुन की दावाग्नि में अपने को खुल्लमखुल्ला लुटा रहे हैं तो फिर राष्ट्र और समाज का कैसे कल्याण हो सकता है। कैसे वह उन्नति की चरम-सीमा पर पहुँचकर अपने को सबल और शक्तिवान बना सकता है! एक ओर जहाँ मैथुन का यह विनाशक बवण्डर चल रहा है, वहाँ दूसरी ओर अप्राकृतिक मैथुन की आँधियाँ भी गर्ज रही हैं। ऐसा कोई भी स्कूल नहीं, ऐसा कोई भी कालेज नहीं, ऐसा कोई भी भारतवर्षीय समाज नहीं, जहाँ ये आँधियाँ न गर्ज रही हों—जहाँ के सुकुमार बालक-बालिकाएँ इसकी भयङ्कर चपेटों में न पड़े हों! न तो किसी में पुरुषत्व रह गया है और न मनुष्यत्व। जब पुरुषत्व की सृष्टि करनेवाला, मनुष्यत्व को सुदृढ़ करनेवाला वीर्य ही लोगों के शरीर में नहीं रह गया तो कहाँ से इन दोनों मूल शक्तियों का विकास होगा। इनके

विकास का मूल तो वीर्य ही है। किन्तु वीर्य आज पानी की तरह बहाया जा रहा है। एक ओर जहाँ वयस्क स्त्री-पुरुष अति मैथुन द्वारा अपने रज और वीर्य का विनाश कर रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर कैशोर बालक-बालिकाएँ अप्राकृतिक मैथुन की अग्नि में अपने को झोंक रही हैं। एक ओर अविकसित और यौवन-हीन सन्तान पैदा हो रही है, और दूसरी ओर वह स्वयं अपना सर्वनाश कर रही है। यदि ऐसी अवस्था में भी लोग समाज और राष्ट्र के कल्याण की आशा करें तो आश्चर्य है ?

समाज का बच्चा-बच्चा आज झुलस उठा है। आज प्रत्येक नवजवान की शक्ति भस्म हो गई है। सड़कों पर, रास्तों पर, गलियों या कहीं भी ऐसा कोई बालक और युवक नहीं दिखाई देता जो ताजे गुलाब के फूल की भाँति मुस्कुरा रहा हो और और जिसके अन्दर सिंह की-सी दहाड़ने की शक्ति हो। सभी जल गये हैं—भस्म हो गये हैं। शरीर के त्वचाओं के अन्दर केवल, हड्डियों में चिपटी हुई मांस की थोड़ी-सी बोटियाँ शेष रह गई हैं। चेहरे पर मुर्दनी नाच रही है। आँखें लाल-पीली बन गई हैं। शरीर में साहस और शक्ति का नाम नहीं। किन्तु फिर भी विलासिता के सैकड़ों सामान शरीर पर लदे हैं। सिर पर बाल, हाथ में घड़ी, पैरों में कामदार जूते और कोट, कमीज, वास्कट पैन्ट इत्यादि। एक ओर शक्तियों का अपव्यय हो रहा है, जीवन का सर्वनाश किया जा रहा है और दूसरी ओर विदेशी

सभ्यता तथा आदर्श का अनुसरण। किन्तु इससे क्या हमारे समाज का कल्याण हो सकेगा? इससे क्या हमारा राष्ट्र उन्नति की चरम-सीमा पर पहुँचकर अपने प्राचीन नाम का डङ्का बजा सकेगा? नहीं, कभी नहीं। ऐसे कुलसे और मृतक युवकों से इसकी आशा भी करनी व्यर्थ है। यह तो तभी हो सकता है जब समाज में भरत-जैसे बालक और अभिमन्यु-जैसे नवयुवक पैदा हों। और इसका होना तभी सम्भव हो सकता है जब बालकों पर नियन्त्रण रखकर उन्हें ब्रह्मचारी बनाया जाय।

हस्त-मैथुन

संसार में स्त्री-पुरुष का प्रसंग अनिवार्य है। ऊपर मैथुन के जो आठ प्रकार बतलाये गये हैं, उनसे समाज को उतनी क्षति नहीं पहुँच रही है, जितनी इस अप्राकृतिक प्रयोग से पहुँच रही है। समाज का प्रत्येक कैशोर बालक आज इस रोग का शिकार है। आज प्रत्येक नवयुवक की हृदय-शक्ति को पाप के इस ज्वाला ने जला दिया है। पाप और व्यभिचार की यह ज्वाला संसार में अन्य पापों से कहीं अधिक भयंकर है। इससे बालक के विकास की शक्तियाँ कम हो जाती हैं। उसके जीवन में घुन की भाँति एक महारोग लग जाता है। स्मरण-शक्ति जाती रहती है। साहस और धैर्य का दुर्ग ढह जाता है। शरीर की नसें ढीली पड़ जाती हैं। जननेन्द्रिय टेढ़ी, छोटी और शिथिल हो जाती है। वह मुख की ओर मोटी और जड़ की ओर पतली-सी पड़ जाती है।

उसके ऊपर एक मोटी नस उभड़ आती है। ये नपुंसकता के चिह्न हैं। ऐसा बालक पूर्ण वयस्क होने पर स्त्री-सहवास के योग्य नहीं रह जाता। किसी गन्दे चित्र तथा कुत्सित भाव-पूर्ण नाच-गाने को देख-सुन कर के ही उसके शरीर का वीर्य स्खलित हो जाता है। वह सन्तान उत्पन्न करने में सर्वथा अयोग्य और निरस्त्र-सा होता है।

हस्त-मैथुन से शरीर की नसें काँप जाती हैं। जिस तरह वायु के प्रबल झोकों से एक नन्हीं कालिका टेढ़ी होकर झुलस जाती है उसी प्रकार हस्त-मैथुन के धक्के से सारा शरीर झुककर विनष्टप्राय-सा हो जाता है। शरीर के भीतर 'मनोवहा' नामक एक प्रमुख नाड़ी है। इस नाड़ी के द्वारा शरीर के सब रगों में रुधिर का सञ्चार होता है। यही नाड़ी मनुष्य को स्वस्थ और सबल भी बनाती है। किन्तु हस्त-मैथुन से इस नाड़ी का विशेष रूप से विनाश होता है। वह हस्त-मैथुन के अत्यन्त जोरदार झोंके को न सहकर सिकुड़ जाती है। उसके संचालन की क्रिया-शक्ति रुक जाती है। जिसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य धातु की दुर्बलता, प्रमेह तथा स्वप्न-मेह आदि भयङ्कर रोगों का शिकार बन जाता है।

हस्त-मैथुन से मानव-शरीर का अधिक अंश में विनाश होता है। ऐसा विनाश स्त्री-संसर्ग से नहीं होता। संसर्ग के समय वीर्य धीरे-धीरे बाहर निकलता है; पर हस्तमैथुन का भयङ्कर झोंका वीर्य

के अधिक अंश को एक साथ ही बाहर निकाल फेंकता है। इस क्रिया से हृदय और मस्तिष्क को एक भयङ्कर धक्का भी लगता है। जिससे शरीर की सारी नसें काँप जाती हैं। और वीर्य का अवशेष अंश भी पानी की भाँति बाहर निकल जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य की आयु-शक्तियाँ धीरे-धीरे क्षीण होने लगती हैं। वीर्य में एक प्रकार के कीड़े होते हैं जिनमें सांसारिक रोगों से युद्ध करने की महाशक्ति होती है। वीर्य जितना ही सुदृढ़ और शक्तिशाली रहेगा, उतना ही उसके कीड़े भी बलवान होंगे। हस्त-मैथुन की अनैसर्गिक क्रिया से इन कीड़ों का अधिक संख्या में विनाश होता है। और मनुष्य हैजा, मलेरिया, प्लेग इत्यादि भयङ्कर रोगों का शिकार बनकर असमय में ही संसार से विदा हो जाता है।

संसार के अधिकांश रोग इस हस्त-मैथुन-क्रिया से उत्पन्न होते हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि जो मनुष्य इस महारोग में आग्रस्त होता है उसका मस्तिष्क विकृत-सा रहता है। किसी भी बात को स्थिर होकर वह सोच ही नहीं सकता। जिस तरह नदियों में क्षण-क्षण पर छोटी-छोटी लहरियाँ उठती रहती हैं, उसी प्रकार उसके विचार भी सदैव पलटते रहते हैं। वह स्वभाव का क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है। हृदय में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। खाँसी, श्वाँस, यक्ष्मा आदि विषैले रोगों का यह घर-सा बन जाता है। उसकी प्रतिभा समूल नष्ट हो जाती है।

अमेरिका के एक विद्वान डाक्टर ने अपनी एक पुस्तक में हस्त-मैथुन की चर्चा करते हुए लिखा है—"मनुष्यों के लिए यह रोग बड़ा भयानक है। इससे जीवन-शक्तियों का विनाश हो जाता है। मस्तिष्क विकृत हो जाता है। मनुष्य अनेकों प्रकार के रोगों का शिकार बन जाता है। आजकल पागलखानों में ९५ प्रतिशत मनुष्य ऐसे ही पाये जाते हैं, जिनकी चेतन-शक्तियाँ केवल इसी महारोग के कारण बिगड़ी हुई रहती हैं।" हिल साहब ने भी हस्त-मैथुन के विनाशकारी परिणामों का वर्णन करते हुए लिखा है—"हस्तमैथुन वह तीव्र धारवाली कुल्हाड़ी है, जिसे अज्ञानी युवक अपने ही हाथों अपने पैरों में मारते हैं। उनको इसका ज्ञान तब होता है जब उनकी मानव-शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं, जब उनका हृदय, मस्तिष्क और मूत्राशय शक्ति से विहीन हो जाता है। तथा उन्हें स्वप्न-दोष, शीघ्र-पतन, प्रमेह इत्यादि भयंकर रोग चारों ओर से घेर लेते हैं। जननेन्द्रिय टेढ़ी और छोटी हो जाती है।"

हस्तमैथुन के लक्षण

१—ऐसे बालकों में शक्ति और दृढ़ता नहीं होती। वे किसी सबल तथा दृढ़ात्मा मनुष्य की ओर अधिक देर तक देखने का साहस नहीं रखते। वे प्रायः झूठी लज्जा के भावों से भरे हुए तथा इधर-उधर लुकने-छिपने वाले होते हैं।

२—ऐसे लड़के धृष्ट स्वभाव के होते हैं। वे इसे छिपाने के लिए अपने को पूर्ण सदाचारी और धर्मिष्ठ कहते फिरते हैं।

३—उनका चेहरा निस्तेज और कान्ति-हीन हो जाता है। चित्त उदास और दुखी रहता है। प्रसन्नता के सारे भाव नष्ट हो जाते हैं। स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा बन जाता है।

४—कपोलों की गुलाबी जाती रहती है। उन पर झुर्रियाँ तथा एक प्रकार का काला दाग-सा पड़ जाता है।

५—आँखें नीचे धँस जाती हैं। गालों में गड्ढे पड़ जाते हैं। और शरीर की हड्डियां बाहर से साफ-साफ दिखाई देने लगती हैं।

६—मूछों का रंग बदल जाता है। उनमें भूरा तथा लाल पीला रंग आ जाता है। बाल पककर गिरने लगते हैं।

७—बाल्यावस्था में ही बुड्ढे-से दीखने लगते हैं। कमजोर और साहस-शून्य हो जाते हैं। किसी काम में मन नहीं लगता। थोड़े ही परिश्रम से घबड़ा जाते हैं। दम फूलने लगता है। और सरल-से-सरल काम भी कठिन तथा असाध्य ज्ञात होता है।

८—अनेकों प्रकार की चिन्ताएँ चित्त को घेर लेती हैं। हृदय भय से भर-सा जाता है। जरा-सी भय की बात पर चित्त धड़कने लगता है और आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाता है।

९—अग्नि कम हो जाती है। बार-बार भूख लगती है; पर कुछ खाया नहीं जाता। कब्ज और मलबद्धता की बार-बार शिकायत उत्पन्न होती है। वह मसालेदार चटपटी चीजों के खाने की ओर अधिक झुकता है।

१०—नींद नहीं आती। और यदि आती है तो फिर किसी बात का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। आँखें खुलने पर चित्त आलसी और उत्साहहीन-सा हो जाता है।

११—रात में कई बार स्वप्न-दोष होता है।

१२—वीर्य पानी की भाँति पतला हो जाता है। उसमें रहने वाली महाशक्ति नष्ट हो जाती है। पेशाब के साथ ही बूँद-बूँद कर वीर्य टपकता है।

१३—बार-बार पेशाब मालूम होती है। पर स्पष्ट रूप से होती नहीं। कभी-कभी पेशाब के साथ धातुएँ भी जाती हैं।

१४—शरीर के अंग-प्रत्यंगों में प्रायः दर्द हुआ करता है। हाथ-पैरों में सनसनी और एक प्रकार की झुनझुनाहट-सी हुआ करती है।

१५—पैर के तलुओं तथा हाथ की हथेलियों से पसीना-सा छुटा करता है।

१६—हाथ और पैरों में कँपकँपी आया करती है। किसी वस्तु को हाथ में लेने पर वह हिलने लगती है और देर तक हिलती रहती है।

१६—शृंगारमयी वस्तुओं की ओर चित्त अधिक आकर्षित होता है। अश्लील तथा गन्दे भावों से पूर्ण पुस्तकों के पढ़ने में जी लगता है।

१७—स्त्रियों के समाज में जाने के लिए चित्त तरसा करता

है। तथा उन्हें देखने के लिए आँखों से लुक-छिपकर व्यभिचार करना पड़ता है।

१८—आँखों के सामने अँधेरा-सा छा जाता है। और अपने-ही-आप मूर्च्छा-सी आने लगती है।

१९—स्मरण-शक्ति नष्ट हो जाती है। मस्तिष्क निर्जीव और विचार-शक्ति से हीन-सा हो जाता है। रात का देखा हुआ स्वप्न प्रभात होते-होते भूल जाता है। मानसिक शक्तियों का प्रायः विनाश-सा हो जाता है।

२०—दिमाग गर्म हो जाता है। आँखों की ज्योति कम हो जाती है। और शरीर में जलन-सी मालूम होने लगती है।

२१—दाँतों के मसूड़े फूल आते हैं। मुख से दुर्गन्धि निकलने लगती है।

२२—कमर झुक जाती है। चलते समय ऐसा ज्ञात होता है मानो कोई पचास वर्ष का बूढ़ा मनुष्य जा रहा है।

२३—गला रूखा हो जाता है। वाणी की कोमलता जाती रहती है।

२४—वृषण बढ़कर नीचे की ओर अधिक लटक जाते हैं।

२५—किसी काम में सफलता नहीं मिलती। चारों ओर से लांछना और अपमान का ही पुरष्कार मिलता है।

जिस पुरुष या कैशोर बालक-बालिका में ये लक्षण प्रतीत हों उसे देख यह समझ लेना चाहिये कि यह हस्त-मैथुन द्वारा अपनी

शक्तियों का विनाश कर रहा है। यद्यपि वह उसके छिपाने की चेष्टा करता है और लोगों के सामने सदाचारी बनने का ढोंग रचता है, पर उसकी आंखें, उसकी आकृति यह चिल्लाकर कह देती हैं कि यह जो कुछ कह रहा है, सब असत्य कह रहा है। आज दिन समाज की गोद ऐसे अनेकों पुरुषों और बालकों से भरी हुई है। ऐसे बालक अज्ञान और काम की अन्धी भावना में चूर होकर एकान्त में बैठ बड़ी खुशी से अपने जीवन का सर्वनाश कर देते हैं। उन्हें थोड़ा आनन्द भी मिलता है। किन्तु यह क्षणिक आनन्द उनके लिए विष का काम करता है। उनकी जीवन-कली अल्प काल में ही बुझ जाती है। और वे अपने माता-पिता को रोते-बिलपते छोड़ इस संसार से प्रस्थान कर जाते हैं। समाज में फैली हुई इस भयानक कुरीति का शीघ्र-से-शीघ्र विनाश होना चाहिये। इस महारोग के जाल में ही फँसकर देश के सैकड़ों लाल प्रति सप्ताह अपने जीवन की इहलीला समाप्त कर देते हैं। कोई तपेदिक का शिकार होकर जाता है तो कोई राज-यक्ष्मा का। सभी किसी न किसी भयानक रोग में आग्रस्त हो एक के बाद एक संसार से उठते जा रहे हैं। फिर समाज कैसे अपना उत्थान कर सकेगा! यही सोचने की बात है।

गुदा-मैथुन

यह हस्तमैथुन से भी निन्दनीय कर्म है। इससे बालकों के जीवन का विकास रुक जाता है। इस देश और समाज के

अभाग्य से करोड़ों बालक आज नर-पिशाचों द्वारा काम की इस भीषण ज्वाला में झोंके जा रहे हैं। बड़े-बड़े कालेजों, स्कूलों और धर्म-संस्थाओं के अन्दर भी यह भयंकर पाप छिपा हुआ है। जहाँ देखिये, वहीं पर्दे के अन्दर इसकी भीषण ज्वाला काम कर रही है। जब हम बड़े-बड़े शिक्षितों और सम्माननीय व्यक्तियों को बालकों के जीवन का सर्वनाश करते हुए पाते हैं तो हमें उनकी मनुष्यता पर घृणा होने लगती है और विवश होकर उन्हें राक्षस के नाम से पुकारना पड़ता है। शिक्षितों और अशिक्षितों की यह राक्षसी-लीला देश को महापतन के गह्वर में झोंक रही है। जब देश के बच्चे ही महापतन की ओर ढकेले जा रहे हैं, तो फिर देश क्यों न पतन के गर्त्त में गिरेगा? किसी देश का शुभाशुभ तो उस देश के बच्चों के जीवन पर ही निर्भर रहता है।

काम-वासना की चक्की चल रही है। मानव-जीवन उसी में पड़कर अपने अस्तित्व से वंचित होता जा रहा है। जिनकी काम-वासना की पूर्ति के लिए स्त्रियों का जीवन नरक से भी अधिक जघन्य बना हुआ है; उनसे समाज का अंग क्षत-विक्षत हो ही रहा है; किन्तु जो उस ओर से विवश होकर छोटे-छोटे बालकों के जीवन का सर्वनाश करते फिरते हैं, इससे अधिक भयङ्कर स्थिति उत्पन्न हो रही है। सुधार-प्रिय लोगों को चाहिये कि वे इस ओर अपना अधिक ध्यान दें। और समाज में फैले हुए इस महारोग का विनाश कर डालें। यहाँ हम यू० पी० के सर्वस्व

स्वर्गीय गणेशशंकर विद्यार्थी के एक लेख को ज्यों का त्यों उद्धृत कर रहे हैं, इससे यह भली भाँति पता चल जायगा कि इस विनाशक आँधी से हमारे समाज और राष्ट्र को कितनी क्षति पहुँच रही है—

"मनुष्य शिश्नोदर सम्बन्धी वासनाओं का पुंज है। इन्द्रिय सम्यक् रूप से उसके काबू में नहीं है। प्रयत्नशील मुमुक्षु का मन भी इन्द्रियों की व्याधियों से विचलित हो जाता है। मनुष्य-स्वभाव की यह दुर्बलता बड़ी दयनीय है। इस दिशा में अथक परिश्रम करने वाले लोगों ने मानव-समाज के सामने इस विषय की कठिनताओं का निरूपण बड़े स्पष्ट रूप से किया है। भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले नरों का मन भी समय-समय पर इन्द्रियों द्वारा आकृष्ट कर लिया जाता है। "इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।" मनोनिग्रह का केवल एक ही उपाय है। वह है सतत अभ्यास और वैराग्य। "अभ्यासेन तु कौन्तेय, वैराग्येण च गृह्यते।" किन्तु आज कल भारतवर्ष के दुर्भाग्य से हमारे यहाँ जिस शिक्षा का प्रचार है, उसमें युवकों के चरित्र-गठन की ओर रंच मात्र भी ध्यान नहीं दिया जाता। संयम, मनोनिग्रह, शारीरिक बल-वर्द्धन, और चरित्र-दृढ़ता को हमारे शिक्षा-क्रम में कोई स्थान नहीं दिया गया है। यही कारण है कि हमारे नौजवानों का आचरण बहुत ढीला-ढाला-सा रहता है। हमारी वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में बहुत दिनों से एक

घातक रोग फैल गया है। बालक और युवक एक दूसरे के साथ नितान्त अवांछनीय रीति से मिलते-जुलते और मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करते नजर आते हैं। शिक्षा संस्थाओं के कई अध्यापक-गणों की चित्त-वृत्ति भी चिनगारियों के साथ खिलवाड़ करती नजर आती है। जिन लोगों ने शिक्षालयों, जेलखानों, बोर्डिंग-हाउसों और सिपाहियों के रहने के बैरेक-घरों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया है, उनका कहना है कि पुरुषों के बीच आपसी कामुकता इन स्थानों में बहुत अधिक परिमाण में पाई जाती है। पाश्चात्य विद्वानों ने इस सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। एड-वर्ड कारपेन्टर, जे० ए० साइमान्डस, वाल्टविटमेन, हेवलाक एलिस आदि मनीषियों ने मानव-स्वभाव की इस कमजोरी का विवेचन करते समय यह दिखला दिया है कि सुधारकों को इस दिशा में बहुत सोच-समझकर काम करना चाहिये। स्कूलों एवं कालेजों तथा उनके छात्रावासों में जो बालक शिक्षा पाते तथा निवास करते हैं, उनके आचरण की ओर ध्यान देना समाज का मुख्य कर्तव्य है। आजकल समाज के अज्ञान के कारण हमारे छोटे-छोटे निरपराध सुन्दर बच्चे दुष्ट-प्रकृति-मित्रों और पापी शिक्षकों की काम-वासना के शिकार हो रहे हैं। बालकों के ऊपर जिस रीति से बलात्कार किया जाता है, उसका थोड़ा-सा विवरण यहाँ देना असामयिक न होगा। जिन सौ-पचास स्कूल-कालेजों के निरीक्षण करने का हमें अवसर मिला है, उन्हीं की परिस्थि-

तियों के अवलोकन से प्राप्त अनुभव के बल पर हम यह सतरें लिख रहे हैं। प्रत्येक स्कूल या कालेज में कुछ ऐसे गुण्डे विद्यार्थियों का समुदाय रहता है, जो सुन्दर बालकों की टोह लिया करता है। जब वे पहले पहल स्कूलों में आते हैं, तब बदमाश मण्डली उन्हें तंग करना, मारना-पीटना, उनकी कितावें छीनना एवं प्रत्येक रीति से उनका जीवन भार-भूत बनाना प्रारम्भ कर देती है। बेचारा लड़का कहीं खड़ा है और उसे एक चपत जमा दी। कहीं उसकी कितावें फाड़ फेंकी, तो कहीं उसकी कलम छीन ली। पहली छेड़छाड़ इस तरह शुरू होती है। लड़का बेचारा मास्टरों से शिकायत भी करे तो उससे क्या ? शैतान मण्डली उसे डराती-धमकाती है। उससे कहा जाता है—अच्छा बच्चाजी निकलना बाहर देखो कैसी मिट्टी पलीद करते हैं तुम्हारी! असहाय बलि-पशु इस प्रकार प्रतिदिन सताया जाता है। धीरे-धीरे वह इन शैतानों से छुटकारा पाने के लिए उन्हींके गुट्ट में शरीक हो जाता है। बस, जहाँ वह इस प्रकार उस गुट्ट में शरीक हुआ कि उसका सर्वनाश प्रारम्भ होता है। जिस स्कूल में शिक्षक भी उसी फन के हुए, उस स्कूल में बालकों के नैतिक-जीवन की मृत्यु ही समझिये। दुष्ट साथियों और शैतान मास्टरों की काम-वासना का साधन बना हुआ वह बालक अपनी दुरवस्था कहे तो किससे कहे ? माता-पिताओं से ? भला, किस बालक की इतनी हिम्मत है कि वह अपने माता-पिता से ये कष्टदायक

बातें कह सकें! बालकों के निन्नानवे फीसदी रक्षकगण इतने मूर्ख होते हैं कि इन बातों को समझ ही नहीं सकते। यदि उनके कान में कभी कोई ऐसी बात पड़ भी जाती है तो वे बजाय इसके कि अपने बालकों के साथ अत्याचार करने वालों की खाल खींच लें, उलटा अपने बच्चों को ही पीटते हैं। बच्चों के लिए एक तरफ खाई और एक तरफ कूआँ की समस्या हो जाती है। इसलिए वे अपना दुःख किसी से नहीं कहते। समाज की क्रूरता-मयी उदासीनता एवं घृणित मित्रों के पापाचार से पीड़ित युवक अपने मनुष्यत्व को नष्ट करके अपने भाग्य को कोसा करते हैं। जो बालक इस प्रकार सताये जाते हैं, उनकी वीरता, दृढ़ता, यौवन की उन्मत्तधीरता और मनुष्यत्व का सर्वनाश हो जाता है। वे रात-दिन जननेन्द्रिय सम्बन्धी विषयों का चिन्तन किया करते हैं। उनकी संजीवनी-शक्ति का ह्रास हो जाता है। उनका पठन-क्रम अस्तव्यस्त हो जाता है। प्रस्फुटित तीव्र-स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है। मनुष्य-समाज को अमूल्य रत्न प्रदान करने की क्षमता रखनेवाली मेधा-शक्ति बूँद-बूँद टपक कर धूल में मिल जाती है। जो मनस्वी हो सकते, जो उदात्त विचारक बनते, जो अमर गायक होते, जो समय चक्रपर आरूढ़ होकर अपनी मन-चाही दिशा में उसे घुमा सकते, वे मानव-समाज के भावी नेतागण, जीवन-प्रारम्भ के प्रथम चरण में ही बर्बरता, नृशंसता, दुश्चरित्रता और दौरात्म्य की ज्वाला में झुलसकर मृतप्राय हो जाते हैं।

हमारे पास इस समय स्कूल-कालेजों की आचरण-भ्रष्टता को प्रमाणित करने वाली कोई ऐसी तालिका नहीं है जिसके आधार पर हम इस भयानक महामारी की सर्वव्यापकता को सिद्ध कर सकें। लेकिन सत्यान्वेषण का तरीका संख्या-सूची के अलावा और कुछ भी है। वह है अपनी आन्तरिक अनुभव-शक्ति। उसीके बल पर हम अत्यन्त निर्भीकतापूर्वक यह कहते हैं कि आजकल हमारे अधिकांश विद्यालय इस रोग से आक्रान्त हैं। अभी तक इस विषय की ओर किसी ने ठीक तरीके से समाज का ध्यान नहीं खींचा है। इस विषय का साहित्य लिखा जरूर गया है; लेकिन उससे सामाजिक सद्भावना के जागरण में जितनी सहायता मिलनी चाहिये थी उतनी नहीं मिल सकती। सामाजिक जीवन के इस अंग का चित्रण करने के लिए ऐसे साहित्य की जरूरत है जो समाज को तिलमिला दे; लेकिन उसे उस प्रकार की वासनाओं की ओर झुकाने का काम न करे। बदमाश के अनाचारों का चित्रण ऐसा सरस और मोहक न हो कि उसी की ओर रुझान हो जाय। जरूरत है समाज के हृदय को जलाने की, न कि उसे गुदगुदाने की। लेकिन जब तक समाज की आँखें नहीं खुलतीं, तब तक के लिए क्या यह महत्वपूर्ण प्रश्न योंही छोड़ दिया जाय? नहीं, इसके प्रतीकार की आवश्यकता है। माता-पिता का यह कर्तव्य है कि वे अपने बालकों के प्रति इस सम्बंध में अत्यन्त सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार करें। बालकों

के मन से यह भय निकल जाना चाहिये कि उनकी कष्ट-कथा यदि उनके अभिभावक सुनेंगे, तो वे उल्टा उन्हीं को दण्ड देंगे। जब तक बच्चों के दिल में यह भय है, तब तक वास्तविक परिस्थिति का पता लगाना असम्भव है। बालकों के रक्षकों का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों में अपने स्वयं के प्रति पूर्ण विश्वास और प्रेम के भाव उत्पन्न करें। सरकार यदि चाहे तो इस विषय में बहुत कुछ सहायक हो सकती है। हमारे पास बहुधा ऐसे सम्वाद आते रहते हैं, जिनमें डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के शिक्षकों की दुश्चरित्रता का उल्लेख रहता है। इस प्रकार के शिकायत-पत्रों का बराबर आते रहना शिक्षा-संस्थाओं के दूषित होने का लक्षण है। प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्चशिक्षा-संस्थाओं तथा छात्रावासों के अध्यापकों, निरीक्षकों और छात्रों में प्रचलित दुर्गुणों और दुराचारों की जाँच करना तथा अत्याचारों को निर्मूल करने के साधनों की सिफारिश करने के सम्बन्ध में प्रान्तीय सरकार एक कमेटी बना कर इस प्रश्न की गुरुता और व्यापकता का ठीक-ठीक पता लगा सकती है। बिहार और उड़ीसा की सरकार ने सन् १९२१ ई० में प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक कमेटी बैठाली थी। उस कमेटी की एक उपसमिति ने स्कूलों के सदाचार के प्रश्न पर विचार किया था। उस कमेटी ने इस सम्बन्ध में अपनी जो रिपोर्ट पेश की है, उसका विवरण हम किसी अगले लेख में देंगे। इस समय तो हम केवल इतना

ही कहना चाहते हैं कि विहार-सरकार की तरह यदि यू० पी०, सी० पी०, पंजाब, आसाम, बंगाल आदि प्रान्तों की सरकारें भी इस प्रश्न की व्यापकता का पता लगाने का प्रयत्न करें तो बड़ा भारी काम हो सकता है। यह प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। सार्वजनिक सदाचार के प्रश्नों पर लिखने वालों के कन्धों पर बड़ी जबर्दस्त जिम्मेवारी होती है। सम्भव है, हमारे पाठकों को यह प्रश्न किंवा इसपर कुछ लिखना और इसकी खुले-खजाने चर्चा करना—अश्लील जँचे, लेकिन बालकों की रक्षा के लिए जो चिन्ताशील हैं, वे इस ओर जरूर आकृष्ट होने की दया दिखाएँगे। हम प्रारम्भिक, माध्यमिक और हाई-स्कूल के हेडमास्टरों, कालेज के प्रिन्सपलों तथा इस प्रश्न को सुलझाने की चिन्ता करनेवाले अन्य विद्वज्जनों से इस सम्बन्ध में विचार करने तथा इस दुर्गुण से मुक्ति पाने का उपाय सोचने की प्रार्थना करते हैं।

स्वप्न-दोष

मनुष्य स्वभाव ही से विलासी होता है। वह स्वभाव से ही अपनी इन्द्रियों की ओर प्रवृत्त होता है। यद्यपि प्रकृति की ओर से उसे ऐसी शक्तियाँ मिली हुई हैं जिनसे वह अपनी इन्द्रियों की लोलुपता को विनष्ट कर सकता है अथवा उनके ऊपर अपना नियन्त्रणपूर्ण शासन रख सकता है। पर वह प्रकृति की ओर से दी हुई अपनी उन शक्तियों का मूल्य नहीं पहचानता और न उनका वास्तविक उपयोग ही करता है। केवल अज्ञानतावश, स्वातन्त्र्य

विचारों से रहित एक गुलाम की भाँति उनके संकेतों पर नाचने लगता है। इन्द्रियाँ तो स्वभावतः हठी और शासन को न पसन्द करनेवाली होती हैं। एकवार जिसे अपने चंगुलों में फँसाया, जिसकी आत्म-शक्तियों पर अपना प्रभाव स्थापित किया, तो फिर उसे उसके जीवन भर नहीं छोड़तीं। वह मनुष्य उन इन्द्रियों के वशवर्ती वनकर संसार में मर्कट की भाँति नाच किया करता है। न उसके जीवन की सत्ता रह जाती है और न उसकी मनुष्यता के चिह्न। उसका जीवन कुत्ते के जीवन से भी बदतर और घृणित हो जाता है। संसार की लांच्छनाएँ तथा घृणित अवस्थाएँ ही उसे संसार की ओर से भेंट-स्वरूप मिलती हैं।

मनुष्य की इन इन्द्रियों में शरीर के ऊपर जिसका प्रवल शासन है, जो मानव-चेतना को विनष्ट करने के लिए सदैव उत्तेजित-सी रहा करती है और जो अपनी उत्तेजना पर संसार के सारे धार्मिक कार्यों को भी खाक कर डालती है, वह है जननेन्द्रिय। प्रत्येक मनुष्य इसका गुलाम होता है। संसार में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं, जो इससे अपना पिण्ड छुड़ाकर अपनी मानवीय शक्तियों की रक्षा कर सके। यद्यपि इस इन्द्रिय से ही संसार का प्रसार और विकास होता है; पर, इसके लिए प्रकृति की ओर से एक नियम और विधान है। जब मनुष्य अधिक पापी और वासना-लोलुप बनकर प्रकृति के इन नियमों का उल्लंघन कर बैठता है, तो इसी इन्द्रिय से प्रचार और विकास के

बदले संसार का महानाश होता है। आज वर्तमान दुनियाँ में इसी महाविनाश की चक्की चल रही है। कोई ऐसा बूढ़ा, कोई ऐसा युवक, कोई ऐसा प्रौढ़ और कोई बालक नहीं बचा है, जो अपनी जननेन्द्रिय का खरीदा गुलाम बनकर संसार के महाविनाश की तैयारी न कर रहा हो। जो वंश सभ्यता का दम भरते हैं, जो राष्ट्र-शिक्षा के मैदान में अपने को सबसे आगे बताते हैं, उनके अन्दर भी मानवता का विनाश हो रहा है। उनकी गोद में पलनेवाले बच्चे और युवक, उसी भाँति महारोगों के शिकार हैं, जिस प्रकार इस अभागे भारतवर्ष के। कहने की आवश्यकता नहीं; किन्तु फिर भी मैं दावे के साथ कहूँगा कि भारत के प्राचीन गौरव तथा उसकी प्राचीन संस्कृति ने और देशों के युवकों की अपेक्षा, यहाँ के युवकों की कुछ अधिक अंश में रक्षा की है। यदि भारत की वह प्राचीन संस्कृति भारत के साथ न होती, यदि भारत के प्राचीन ब्रह्मचर्यमय-जीवन की महत्ता और उसका इतिहास धुँधले रूप में भी भारतीयों के सामने न होता तो आज भारतीय युवकों में सदाचार की जो ढीली साँस चल रही है, उसका कभी अन्त हो गया होता। और भारत से जीवन और जागृति की आशा सदा के लिए प्रत्येक मानव-रूप से कूँच कर जाती।

जो हो, किन्तु फिर भी इस समय भारतीय नवयुवकों में कदाचार की एक भयंकर लहर चल रही है। वे हस्त-मैथुन और गुदा-मैथुन के द्वारा अपनी जीवन-शक्तियों का विनाश कर रहे

हैं। स्कूल और कालेजों के मास्टर, धार्मिक-संस्थाओं के उपदेशक तथा देवी-देवताओं के पंडे-पुजारी भी आज इसी पिशाची-वृत्ति में लिपटे हुए देख पड़ते हैं। यही कारण है कि आज समाज का कोई भी मनुष्य स्वप्न-दोष-जैसे भयंकर रोग से बचा हुआ नहीं पाया जाता। सभी रात की अपनी प्रगाढ़ निद्रा में इस महा-रोग के शिकार होते हैं। नवयुवकों के सिर पर तो इस रोग की भयानक चक्की-सी चल रही है। वे दिन भर स्त्रियों की खोज में रहते हैं। कोमल और फूल-से सुकुमार बालकों के जीवन को धूल में मिलाने के लिए प्रयत्न करते हैं। सड़कों, रास्तों और गली-कूँचों में गन्दे गानों की बाँसुरी बजाया करते हैं। और रात में सोने पर नींद में उन्हीं के साथ विचरण किया करते हैं। उन्हें ऐसा मालूम होता है मानों वह स्त्री अथवा वह बालक उनके शरीर में लिपटा हुआ उन्हें प्यार कर रहा है। बस, केवल इतने ही में उन अशक्त हृदय वाले पापियों का वीर्य धोती-बिछावन पर गिर जाता है। और उनकी निद्रा खुल जाती है। फिर जागने पर उनके हृदय में जो पश्चात्ताप, जो दारुण घृणा और जो उदासी-नता पैदा होती है, वह उन्हींसे पूछकर जानने की वस्तु है!

स्वप्न-दोष होने के अनेकों कारण हैं। पर उनमें सबसे प्रबल कारण अप्राकृतिक मैथुन ही है। इससे नसें अशक्त हो जाती हैं। उनकी वीर्य-धारण की शक्ति न्यून हो जाती है। अतः किसी साधारण कामोत्तेजक पदार्थ या दृश्य से ही उनके शरीर का

वीर्य वह निकलता है। इसके प्रतिकूल जो मनुष्य ब्रह्मचारी होता है, उसे कभी भी स्वप्न-दोष नहीं होता। अमेरिका के एक प्रसिद्ध डाक्टर का कथन है कि मनुष्य को स्वप्न-दोष केवल अप्राकृतिक मैथुन और मानसिक विकारों के ही कारण होते हैं। जो हो, पर स्वप्न-दोष से मानव-शक्ति का अधिक अंश में ह्रास होता है। मनुष्य की चेतना भ्रष्ट हो जाती है। वह मृगी-जैसे भयंकर रोगों का शिकार बन जाता है। यूरोप के एक डाक्टर ने लिखा है—'मुझे अब तक जितने रोगियों को देखने का मौका मिला है, उनमें अधिक ऐसे थे जिनको स्वप्न-दोष होता था और जो स्वप्न-दोष के कारण ही मृत्यु के निकट पहुँच गये थे।'

वास्तव में स्वप्न-दोष मृत्यु है। इस रोग में फँसकर फिर मनुष्य इससे अपना पिंड नहीं छुड़ा सकता। एक नहीं, चाहे वह सैकड़ों शक्ति-वर्द्धक औषधियों का सेवन क्यों न करे। यह तो तभी छूट सकता है, जब मनुष्य अपने मानसिक विकारों को त्याग कर ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करे। संसार में ब्रह्मचर्य ही मानव-जीवन के लिए संजीवनी-शक्ति है। इसलिए प्रत्येक विचारशील मनुष्य को इसीका अवलम्ब लेना चाहिये।

नपुंसकता

संसार पुरुषत्व का कार्य-क्षेत्र है। जहाँ ही देखिए, वहीं, इसकी सार्थकता गूँज रही है। यदि संसार के बीच से हम पौरुष को अलग कर दें, तो वह उसी खोखले काठ की तरह

निकम्मा हो जाय, जो बाहर से सुन्दर देखने पर भी किसी काम का नहीं रहता। पौरुष और मानव-शरीर से घनिष्ट सम्बन्ध है। संसार, पौरुष का कार्य-क्षेत्र है, पर मानव-शरीर की सम्पूर्ण सत्ता इसी के बल पर आश्रित है। यों तो संसार के सभी जीवों में पौरुष का महत्व और पौरुष की महिमा है, पर हमें यहाँ केवल मानव-जीवन ही से तात्पर्य है। और इसी जीवन में पौरुष की अखंड महिमा समाई हुई है। किसी को देखिए, उसी के अन्दर पौरुष की प्राकृतिक ज्योति विहँस रही है। जिस दिन यह शरीर से निकल जायगा, उस दिन प्राणों का अस्तित्व रहते हुए भी शरीर निकम्मा बन जायगा। सारा संसार मरुस्थल की तरह सूना और दुखदायी प्रतीत होने लगेगा। इन्द्रियों के उपयोग की शक्तियाँ जाती रहेंगी। संसार की सुखमयी सामग्रियाँ काँटे की भाँति चुभने लगेंगी। न तो अपने शरीर का संचालन किया जा सकेगा और न परिवार-वर्ग का। नैराश्य और निरुत्साह का भंडार-सा जमा हो जायगा। सुख और सन्तोष की नितान्त कमी हो जायगी। किसी काम में सफलता प्राप्त करना मुश्किल हो जायगा। इसीलिए किसी विद्वान ने कहा है कि संसार में सब कुछ बर्बाद करके भी पुरुषत्व का संग्रह करना चाहिये। जिसके पास पौरुष है, वही संसार की परिस्थितियों का विजेता समझा जाता है।

मानव-शरीर में पौरुष का होना वीर्य के ऊपर अवलम्बित

है। वीर्य की वृद्धि ही पौरुष की वृद्धि करती है और उसका अभाव मनुष्य को नपुंसक तथा अशक्त बना देता है। जिस पुरुष में जितना वीर्य होगा अथवा जो संयम और प्राकृतिक विधानों द्वारा अपने वीर्य की रक्षा में जितना ही तन्मय रहेगा, वह उतना ही अधिक बलशाली और पुरुषार्थी होगा। उसका जीवन तथा उसका पारिवारिक-सुख संसार में उतना ही सन्तोषमय होगा। पर जो अपने वीर्य को पानी की भाँति बहाता है, जो प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर सदैव अप्राकृतिक व्यभिचारों में तन्मय रहेगा, वह अधिक निकम्मा और नपुंसक हो जाता है। वह न तो संसार की किसी परिस्थिति को अपने अनुकूल बना सकता है और न अपने जीवन को सुखी ही कर सकता है। वह इस संसार में जीवित रहते हुए भी मृतक के समान रहता है। पृथ्वी को उसका भार धारण करने में दुःख-सा मालूम होता है।

मनुष्य नपुंसक क्यों हो जाता है ? उसमें बसनेवाली पौरुष-शक्ति कहाँ और किस प्रकार उड़ जाती है ? इस सम्बन्ध में विचार करते हुए एक जर्मन डाक्टर ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है— 'ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जिस दिन मेरे पास सैकड़ों युवक अपनी जीवन-रक्षा के लिए न आते हों। सबके मुख से केवल एक यही प्रश्न निकलता है—'मेरी खोई हुई पौरुष-शक्ति मुझे पुनः कैसे प्राप्त हो सकती है ?' ऐसे युवकों को उचित सांत्वना देते हुए मैंने उनसे पूछा कि उनकी यह पौरुष-शक्ति कैसे और कहाँ खो गई ?

यह तो प्रकृति की ओर से मिली थी। उसकी कुंजी प्रकृति के ही हाथ में है। फिर किस डाकू ने प्रकृति की उस सम्पत्ति पर आक्रमण कर उसे चुरा लिया। मेरे इस प्रश्न के उत्तर में उन युवकों के मुख से जो शब्द निकले उन्हें सुनकर मैं काँप गया। मेरी अन्तरात्मा जोर से चीख मारकर चिल्ला उठी कि भगवन् तुम्हारी पवित्र शक्तियों का विनाश क्या इस प्रकार राक्षसी-लीला से किया जा सकता है ? ओह! उन्होंने जो उत्तर दिये, उसका तात्पर्य यही था—क्या कहूँ डाक्टर साहब ! प्रकृति की दी हुई इन सम्पति-सामग्रियों को किसी डाकू ने नहीं लूटा है, वरन् मेरी ही अज्ञानता-रूपी पिशाचिनी ने। अप्राकृतिक व्यभिचारों के द्वारा मैंने अपने पुरुषत्व को खाली कर दिया और अब उसीके लिए, भिखारी बनकर दर-दर भीख माँग रहा हूँ।'

सचमुच आज समाज में ऐसे करोड़ों नवयुवक हैं, जिन्होंने जान-बूझकर, सोच-समझकर अप्राकृतिक मैथुन के अग्नि में अपने पुरुषत्व को जला दिया है। उनके शरीर में न कान्ति है और न तेज। न साहस है और न उद्यम-शीलता। यही कारण है कि आज समाज में असन्तोष का भण्डार-सा बनता जा रहा है। समाज की रचना इन्हीं नवयुवकों और बच्चों के बल पर होती है। जब उनकी यह दशा है तब फिर समाज का क्यों न पतन होगा ! क्यों न वह नपुंसक बनकर संसार के सामने हाय-हाय करेगा ?

७—वीर्य-रक्षा क्यों आवश्यक है ?

कुरान, बाइबिल तथा हिन्दू शास्त्रों के अनुसार भी ईश्वर की शक्तियाँ मानव-शरीर में समाई हुई हैं। परन्तु इस सिद्धान्त को मानकर यहाँ इसकी आलोचना करना कि मानव-समाज पाप की ओर अधिक वेग से अग्रसर हो रहा है, अत्यन्त कठिन और दुरूह-सा है। यहाँ तो मानव-जीवन हमारे लिए एक ऐसा तत्त्व है, जिसके विकास की कुंजी, उसी के हाथों में प्रकृति की ओर से मिली हुई है। वही अपने जीवन-तत्त्वों का विकास कर सकता है और वही उनका विनाश भी। वही उन्हें उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाकर अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकता है और वही उन्हें पतन के गह्वर में ढकेलकर अपना सर्वनाश—महाविनाश कर सकता है।

वास्तव में मानव-जीवन का ह्रास केवल वासना के ही कारण हो रहा है। वह इसी की मोहमयी कामना में फँसकर अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्यों को भूला जा रहा है—पाप के समुद्र में चिर दिनों के लिए डूबा जा रहा है। उसका वह उत्थान जो होने वाला था, इसी वासना से नहीं हो रहा है। उसका वह विकास, जिससे संसार प्रभावित होने वाला था, इसी पाप की कलुषित माया से बन्द-सा हो गया है। किसी ने कितना अच्छा कहा है कि वासनाओं पर संयम रखना ही स्वर्ग तथा उसकी

आबाधता नरक है। स्वर्ग और नरक की यह परिभाषा मानव-जीवन पर ही घटित होती है। दोनों उसी के शरीर में समान रूप से समाये हुए हैं। किसी को पाना तथा किसी को न पाना मनुष्य के हाथ में ही है। यदि मनुष्य चाहे तो वह स्वर्ग का राजा हो जाय और यदि वही चाहे तो नरक का कीड़ा बन जाय। किन्तु वह विचार से काम नहीं लेता। अज्ञानतावश वासना की भयंकर अग्नि में पतिङ्गे की तरह जल रहा है।

मानव-जीवन वासना और कामना से भरा है। वह प्रतिदिन प्यासे मृग की भाँति, बालू के चमकते हुए कणों को देखकर मरुस्थल में इधर-उधर दौड़ा करता है। पर उसकी प्यास नहीं बुझती। वह निरन्तर गिरता पड़ता और लड़खड़ाया करता है। दिन-रात असफलताओं और सांसारिक परिस्थितियों का सामना उसके जीवन को करना पड़ता है। अतः उसे इस बात की आवश्यकता रहती है कि वह संसार में अपने को इतना बली और शक्तिशाली बनाये कि संसार की परिस्थितियाँ उसका कुछ बिगाड़ न सकें। दूषित भावनाएँ उसके सामने न आ सकें और वह पाप की भयंकर ज्वाला में अपने को बर्बाद न कर सके। इन सबों के लिए मानव-शरीर को प्रकृति की ओर से एक तंत्र मिला हुआ है। यह वही तंत्र है, जिससे मानव-शरीर का विकास होता है, जिससे जीवन की शक्तियाँ उसमें आकर सन्निहित होती हैं और जिसके बल पर वह संसार को जीतने की अभिलाषा

करता है। इस तंत्र को बूढ़े-बच्चे और जवान सभी जानते हैं। गरीब, क्या अमीर, क्या फकीर, प्रकृति ने सभी के शरीर में अपने हाथों से इस तंत्र का धागा बाँधा है। मनुष्य चाहे उसे तोड़कर फेंक दें या मजबूत बनाये। यह उसका काम है।

प्रकृति के इस तंत्र का नाम है मानव-शरीर का वीर्य। वीर्य क्या वस्तु है? इस सम्बन्ध में पहले ही बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ तो हम एक दूसरे विषय की ही आलोचना करेंगे। मानव-जीवन की चार अवस्थाएँ हैं। प्रथम अवस्था को बाल्यावस्था कहते हैं। मनुष्य जब इस संसार में आता है तो सबसे पहले यही अवस्था उसका स्वागत करती है। यही उसे अपनी गोद में लेती है। इस अवस्था में मनुष्य अबोध और अज्ञान रहता है। उसका शरीर भी अशक्त और क्रिया-हीन-सा होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य की अवस्था आगे की ओर बढ़ती है, त्यों-त्यों उसका शरीर भी सबल और सुदृढ़ होता जाता है। कुछ दिनों के बाद उसके शरीर में एक ऐसा परिवर्तन आता है, जिसे देखकर वह स्वयं आश्चर्यचकित हो जाता है। उसका शरीर सहसा उत्तेजना से भर जाता है। नस-नस में जीवन की एक लहर-सी दौड़ पड़ती है। चेहरा, कान्ति और प्रभा से हँस उठता है। मांस-पेशियाँ भर जाती हैं। मुख के ऊपर चिकने और छोटे-छोटे बाल निकल आते हैं। मानव-शरीर का यह परिवर्तन यौवन के नाम से पुकारा जाता है। बालकों के सोलह और बालि-

काओं के तेरह वर्ष की अवस्था में यह परिवर्तन उनके शरीर में आता है।

यौवन अपने आगमन के साथही मानव-शरीर में एक बिजली-सी शक्ति उत्पन्न करता है। वह आकर बहुत दिनों से सोये हुये मानव-शरीर में रहने वाले वीर्य को जगाता है। शरीर का राजा वीर्य, जाग कर शरीर में उत्तेजना भरता है। यौवन को सबल और पुष्ट बनाता है। शरीर के अंग-प्रत्यंग में जीवन की ज्योति-सी जलाकर हृदय को उत्साह और कामनाओं का भण्डार-सा बना देता है। कोने-कोने में उथल-पुथल मच जाती है। आँखों में मद, मन में उन्माद और शरीर में उत्साह का साम्राज्य-सा बस जाता है। यह है वीर्य का प्रभाव। इसी के ऊपर मानव-शरीर का भावी-सुख और भावी स्वास्थ्य निर्भर रहता है। पर वीर्य के लिए मानव-जीवन की यह अवस्था अत्यन्त कठिन है। यदि मनुष्य ने यौवन की चंचलता में वीर्य को बहा दिया, यदि उसने उसके व्यापक प्रभाव को न सहकर उसकी सत्ता को धूल में मिला दिया, तो मनुष्य का सारा जीवन भार-स्वरूप-सा हो जाता है। उसे दिन-रात चिन्ताओं और व्याधियों का ही सामना करना पड़ता है। अतः मनुष्य को यौवन में, अपने मन की प्रवृत्तियों को संयम से कसकर बाँधे रहना चाहिये। व्यायाम इसके लिए उपयुक्त साधन है। प्रत्येक नवजवान को प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिये। उपदेश और ब्रह्मचर्य के भावों

से भरी पुस्तकें पढ़नी चाहिये। संसार के महापुरुषों के चरित्रों का अध्ययन करना चाहिये। ईश्वर और ब्रह्म का चिन्तन करना भी उनका धर्म होना चाहिये।

स्वास्थ्य-रक्षा के लिए वीर्य-रक्षा अत्यन्त आवश्यक है। जब वीर्य मनुष्य के शरीर में उत्पन्न होता है, उस समय वह पानी की भाँति तरल और पतला होता है। यह वीर्य किसी काम का नहीं होता। मनुष्य की अवस्था-वृद्धि के साथ ही उसका वीर्य भी गाढ़ा होता है और उसकी पूर्ण यौवनावस्था में अत्यन्त सबल और शक्तिशाली हो जाता है। किन्तु वह ऐसा तभी हो पाता है, जब उसके पतले रूप की रक्षा की जाय। यदि वह असमय में ही अज्ञानता से बहा दिया गया अथवा नष्ट कर दिया गया तो फिर उसका विकास नहीं होता। शरीर भी काला तथा क्षीण हो जाता है। आती हुई शक्तियाँ लौट जाती हैं। अतः भावी विकास के लिए वीर्य के उस पतले रूप की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यक है।

किन्तु अज्ञान बालक थोड़ी-सी उत्तेजना और उद्रेक को बर्दाश्त न कर उस वीर्य का विनाश करने लगते हैं। वे या तो इस वीर्य का विनाश हस्त-मैथुन द्वारा करते हैं या गुदा-मैथुन द्वारा। उनको इसमें आनन्द अवश्य आता है, पर उनकी जीवन-शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। यौवन में ही उन्हें बुढ़ापा आ घेरता है। और कैशोर में ही उन्हें पागलपन, शिर-पीड़ा, दौर्बल्य,

बहुमूत्र, अजीर्ण आदि भयानक रोग घेर लेते हैं। ऐसे बालक, पुरुष होने पर जो सन्तान पैदा करते हैं, वह भी उन्हीं की भाँति मरी हुई और निर्जीव होती है। उससे समाज का उपकार नहीं, वरन् अपकार होता है! समाज कमजोर हो जाता है। राष्ट्र अशक्त बन जाता है। चारों ओर मुर्दा-दिली का बाजार गर्म हो जाता है। पाप और असन्तोष काल की तरह मुँह फैलाकर लोगों का विनाश करने लगते हैं। महामारी, हैजा और विसूचिका अपना चक्कर लगाती रहती हैं। कहाँ तक कहें, इस थोड़ी-सी अज्ञानता के कारण ही मानव-जीवन का सर्वनाश हो जाता है—राष्ट्र और समाज का अस्तित्व चला जाता है!

आज भारत की यह दशा क्यों है ? आज भारतीय समाज क्यों निःशक्त बनकर हाय-हाय कर रहा है ? कारण साफ और प्रकट है। आँखों के सामने घूम रहा है। जो एक बार भारतीय युवकों की ओर आँख उठाकर देख ले उसे यह भली-भाँति विदित हो जायगा कि भारत क्यों अशक्त है ? क्यों वह आज दुःखों के सिकंजे में फँसा हुआ करुण-रोदन कर रहा है ? दस वर्ष की बात है। यूरोप का एक सुधारवादी अंग्रेज भारत के नगरों का परिभ्रमण करने आया था। अपना परिभ्रमण-कार्य्य समाप्त कर जब वह लौटकर यूरोप गया तो उसने एक सभा में भारत के विषय में व्याख्यान देते हुए कहा था कि जिस देश में ऐसा कोई भी युवक देखने में नहीं आता, जिसके चेहरे पर तेज, लाली

साहस का भाव हो, तब वह देश स्वातन्त्र्य-सुख का दावा करे तो उसकी अज्ञानता नहीं तो और क्या है ? वास्तव में यही दशा है। यहाँ के नवयुवक और कैशोर बालक जब अपने शरीर का विनाश ही करने में लगे हुए हैं तो फिर राष्ट्र और समाज का कैसे उत्थान होगा ? भारतीय नवयुवकों के लिए बड़े दुःख की बात है। उन्हें चाहिये कि सच्चरित्र बनकर संसार के सामने आवें। राम और कृष्ण के नाम को सार्थक कर वे संसार को यह बता दें कि हम उन्हीं की भाँति ब्रह्मचारी और देश तथा समाज-सेवी हैं ? हमने अपने पुराने कलंकों को बिलकुल धोकर बहा दिया है। अब हमारा चरित्र स्वर्ग से भी पुनीत और पवित्र है।

देश और समाज के ऊपर इसका प्रभाव तो पड़ता ही है; किन्तु मनुष्य की दशा स्वयं शोचनीय हो जाती है। उसका स्वास्थ्य चौपट हो जाता है। सौंदर्य उसके शरीर से भाग-सा जाता है। उससे जो सन्तान उत्पन्न होती हैं, वे भी अत्यन्त निर्बल और अशक्त ही होती हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपने वीर्य की रक्षा करनी चाहिये। संसार में वीर्य-रक्षा ही जीवन और वीर्य का विनाश करना ही मृत्यु है।
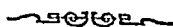
८—समाज की प्रचलित बुराइयाँ

बालकों से समाज की रचना होती है और समाज से बालकों की। दोनों का उत्थान भी एक दूसरे के ऊपर निर्भर करता है। दोनों एक दूसरे की शक्ति लेकर ही अपने उन्नति-रूपी दुर्ग का निर्माण करते हैं। परन्तु इस निर्माण में समाज का ही अधिक हाथ रहता है। कारण समाज की सहायता और शक्ति बालकों को पहले ही अपेक्षित होती है। बालक अशक्त एवं कमजोर अवस्था में समाज की ही गोद में उत्पन्न होता है। समाज उसका पालन करता है, समाज उसे शिक्षा देता है तथा वही उसे अन्धकार की दुनिया से उठाकर प्रकाशमय जगत् में लाता है। समाज में जितना बल होगा, समाज में जितनी शक्ति होगी, उतना ही बल और उतनी ही शक्ति बालक के हृदय में होगी। पर समाज आज बालकों की ओर से निश्चेष्ट है। उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनका आदर-सम्मान, उनका भरण-पोषण, उनका विकास और प्रसार सभी समाज की ओर से उपेक्षित हैं। यद्यपि आज संसार में चारों ओर अधिकार-संग्राम मचा हुआ है। छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी अपने मानवी अधिकारों के लिए लड़-झगड़ रहे हैं। सभी अपनी विकास-सम्पत्ति के लिए आकुल और बेचैन हैं; किन्तु फिर भी हम एक अन्यायी और स्वेच्छाचारी शासक की भाँति बालकों को उनके विकास-जगत् में नहीं जाने देते ! उन्हें उन साधनों और

परिस्थितियों से खुलकर नहीं खेलने देते, जिनसे उनका विकास होता है, जिनसे वे शक्तिशाली और सबल बनकर समाज तथा राष्ट्र का कल्याण करते हैं। यह हमारी महान अज्ञानता नहीं तो और क्या है?

संसार में शक्ति का साम्राज्य है। जिसके हाथ में इस शक्ति की बागडोर है, जो अपने में हलचल और तूफान मचाने की शक्ति रखता है, उससे सभी भयभीत रहते हैं और वही संसार में सब कुछ कर भी सकता है। पर बालक अज्ञान हैं, निर्बल हैं। चाहे उनका गला मरोड़कर मार डालो, चाहे उन्हें जीवित रक्खो। चाहे उन्हें समुद्र की गर्जती हुई लहरों में फेंक दो, चाहे अपनी गोद में स्थान दो। वे लाचार और विवश हैं। वे विरुद्ध में एक शब्द भी न कहेंगे। किन्तु इससे क्या होगा? बालकों के मानवी अधिकारों को हड़प कर क्या कोई संसार में अपने अधिकारों की रक्षा कर सकता है? क्या कोई उन्हें साहस और प्रकाश से वंचित रखकर स्वयं साहस और प्रकाश की दुनिया में रह सकता है? नहीं, बालकों के पतन के साथ ही उसका भी अधःपतन होगा, उसका भी विनाश होगा।

परन्तु इस उन्नति के युग में हमारी स्वेच्छाचारिता अधिक दिनों तक न चल सकेगी, हमारा यह जघन्य पाप अब अधिक दिनों तक पर्दे की ओट में न छिपा रह सकेगा। हम छिपाने का प्रयत्न भी करेंगे तो हमारी कमजोरियाँ और हमारा पतन सारे

संसार को बता देगा कि हम क्या कर रहे हैं और क्यों पतन की ओर दिन-रात बराबर खिसकते जा रहे हैं। आज भी हम केवल अपनी इसी उपेक्षा के कारण पतन की आँधी में इधर-से-उधर मारे-मारे फिर रहे हैं। हमारी इसी भूल ने हमें उस स्थान पर लाकर बैठा दिया है, जिसकी हमें कभी आशा भी नहीं थी। यह बात नहीं कि हम बालकों के जीवन की उपयोगिता को नहीं जानते, उनके भावी विकास के परिणामों को नहीं पहचानते। हम जानते और पहचानते हुए अज्ञान के मार्ग पर बराबर कदम बढ़ाये जा रहे हैं—बराबर उन्हें अन्याय की चक्की में पीसे जा रहे हैं। हमें यह अच्छी तरह से विदित है कि आज जो धूलमें खेल रहे हैं—आज जो अपने आंतरिक भावों को भी प्रकट करने में पूर्ण रूप से असमर्थ हैं, वे ही कल दुनिया में ऐसे महान कार्य करेंगे जिन्हें देखकर सारा संसार आश्चर्य प्रकट करेगा। वे ही सच्चे शूर और सिपाही बनकर रण-स्थल में बड़े-बड़े शत्रुओं को दहला देंगे। वे ही समाज और राष्ट्र के अधिनायक बनकर उसकी डूबती हुई नौका को उस पार ले जायँगे। और वे ही हमें उस दुनिया और प्रकाश में लावेंगे, जिसमें हमारे मानवी-गुणों का विकास होगा।

फिर हम अज्ञानता क्यों करते हैं? क्यों उन्हें ईश्वर के भरोसे छोड़कर उनकी शक्तियों का विनाश करते हैं? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि सदियों की गुलामी के कारण हम अपना अब तक सब कुछ भूल गये थे। हमारी उन्नति की चेष्टा

खाक में मिल गई थी। हम बालकों के जीवन की उपयोगिता को जानते हुए भी उन्हें सुधार न सके, उन्हें प्रकाश की दुनिया में न ला सके। हमारा जीवन स्वयं अपंगु था। फिर हमारे बालकों का जीवन कैसे उत्थानमय होता? कैसे वे उन्नति के प्रकाशमय जगत् में आ सकते थे? जैसे हम थे, वैसे हमारे बालक। किन्तु अब संसार के थपेड़ों ने हमें जगा दिया। हमारी उन्नति की चेष्टाएँ भी अब जाग-सी पड़ी हैं। अब हम यह समझने लगे हैं कि बालकों की ओर से उदासीन रहकर हम अपनी उन्नति नहीं कर सकते। उन्हें अन्धकार में छोड़कर हम अपनी सामाजिक और राष्ट्रीय शक्तियों को सुदृढ़ नहीं बना सकते। अतः अब हमें अपने भावी बच्चों के सुधार के लिए अभी से तन्मय हो जाना चाहिये। उन्हें योग्य वीर पुरुष बनाने के लिए हमें अभी से वीर बनाने की चेष्टा करनी चाहिये।

संसार के सभी सभ्य राष्ट्रों ने इस क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति की है। वे अपने बालकों की शिक्षा-दीक्षा में काफी अग्रसर हो रहे हैं। वे बालकों का लालन-पालन तथा उनका भरण-पोषण अपने उच्च विचारवाली सरकारों से कराते हैं। उनकी सरकारें स्वयं इस विषय में दत्त-चित्त रहती हैं। जिस प्रकार राष्ट्र के अन्यान्य कार्यों में वे अपना उत्तरदायित्व समझती हैं, उसी प्रकार बालकों के भरण-पोषण में भी वे अपनी जिम्मेदारी समझती हैं। इसीसे वहाँ ऐसे अस्पताल और आश्रम बने हुए हैं, जहाँ बालकों की

शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध है। राष्ट्र के प्रत्येक बालक को इन आश्रमों और अस्पतालों में रहना पड़ता है। वहाँ बालकों के गुणों का विकास होता है। वे सभ्य और सुशील बनाए जाते हैं। उनके हृदय में मानवी-गुणों का समावेश कराया जाता है। वहाँ से निकलकर बालक जब दुनिया के सामने आते हैं तो वे एक योग्य और चतुर नागरिक होते हैं।

पर हम ऐसा नहीं कर सकते। हमें तो केवल उन्हीं मार्गों पर चलना होगा, जिन पर हम प्रकृति की ओर से चल सकते हैं और जिन पर चलने के लिए हमें किसी के आदेश और नियन्त्रण की आवश्यकता न पड़ेगी। हमारे लिए यह मार्ग है—अपनी सामाजिक कुरीतियों का विध्वंस करना। जब तक हम इसका विनाश नहीं कर लेंगे, तब तक हमारे समाज और राष्ट्र के अन्दर वे बालक नहीं दिखाई पड़ेंगे, जिनकी हम कामना कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में हमें भावी बालकों के लिए केवल दो प्रश्नों पर ध्यान देना पड़ेगा। एक तो है कि किन-किन मनुष्यों को सन्तान नहीं उत्पन्न करनी चाहिये और दूसरा यह कि जिनको सन्तान उत्पन्न करनी चाहिये, उन्हें कितनी। इन दो प्रश्नों की समस्या यदि हल हो जाय तो समाज और राष्ट्र का अनेक अंशों में कल्याण हो सकता है। पर इस समस्या का हल करना बहुत मुश्किल है। समाज में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है जिसे बच्चा पैदा करने की अभिलाषा न हो। सभी बच्चा पैदा करना चाहते

हैं, सभी अपने दूषित और रोगों से भरे हुए वीर्य द्वारा विकास—सृष्टि करना चाहते हैं? रोगी, कामी, पापी, पागल, व्यभिचारी इत्यादि, जितने भी राक्षस पुरुष हैं, वे सब समाज की गोद में एक बच्चा डालना चाहते हैं। चाहे वह राक्षस हो, चाहे मनुष्य। चाहे इससे समाज का उपकार हो या अपकार। इसकी उन्हें परवा नहीं। समाज को चाहिये कि वह अपने नियंत्रण द्वारा ऐसे लोगों को सन्तान उत्पन्न करने से वंचित रक्खे। वह उन्हीं को सन्तान पैदा करने की आज्ञा दे, जो अपने उचित समय तक ब्रह्मचारी हों तथा जिनके विकास—सृष्टि के द्वारा समाज और राष्ट्र के कल्याण की आशा हो।

ऐसे बालकों की रक्षा तथा उनके पालन-पोषण का भी समाज की ओर से अधिक प्रबन्ध रहना चाहिये। उनकी प्रारम्भिक अवस्था के स्वास्थ्य की भरपूर रक्षा करनी चाहिये। उन्हें सदाचार और ब्रह्मचर्य की शिक्षाएँ दिलानी चाहिये। उन्हें ऐसी परिस्थिति और वातावरण में रखने का प्रबन्ध किया जाय, जहाँ रहकर वे सदाचार को छोड़कर दुराचार न सीख सकें। उनके भीतर छिपी हुई शक्तियों का भी हमें ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिये। अपनी उचित और अनुचित आज्ञाओं का शिकार बनाकर एक क्रीतदास-सा न बना देना चाहिये। अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक अर्ल रसल का इस सम्बन्ध में कथन है—'यदि बालकों का ही ध्यान रक्खा जाय; तो शिक्षा का उद्देश्य उन्हें स्वयं

विचार करने के योग्य बनाना है, न कि उन्हें उनके शिक्षकों के विचारों का अनुकरण करना सिखाना है।' यदि हमारे हृदयमें बालकों के अधिकारों के लिए लेशमात्र भी आदर हो तो हमें उनको ऐसी शिक्षा देनी चाहिये जो उनके अन्दर वह ज्ञान और वे मानसिक आदतें उत्पन्न कर दें जिनका होना स्वातंत्र्य विचारों की उत्पत्ति के लिए अनिवार्य है।

बाल-विवाह

ऊपर हमने यह बताने की चेष्टा की है कि समाज और बालकों के जीवन का कितना गुरुतर सम्बन्ध है। हमें समाज के अन्दर बालकों के अधिकारों की किस प्रकार रक्षा करनी चाहिये ? यह प्रश्न जटिल और विचार-पूर्ण है। इसपर बहुत कुछ लिखा जा सकता था। पर यहाँ उसे लिखने की आवश्यकता नहीं। यहाँ तो हमारे लिए इतना बता देना ही पर्याप्त है कि समाज में ब्रह्मचर्य के द्वारा ही सुन्दर और योग्य बालक पैदा किये जा सकते हैं। और बालकों को ब्रह्मचारी तथा बलवान बनाना समाज का ही काम है। पर समाज अनेक कुरीतियों का शिकार है। यद्यपि हम इस समय कुछ जग गये हैं, और आँखें पसार कर चारों ओर देखने लगे हैं, किन्तु हमारे वर्ग का अधिक अंश अबतक अशिक्षा के अन्धकार में पड़ा हुआ है। हम स्वतंत्रता के लिए लड़ रहे हैं, हम अपने मानवी-अधिकारों के लिए उथल-पुथल मचा रहे हैं, पर उस वर्ग से कुछ मतलब नहीं। वह

समझता ही नहीं कि यह क्या चीज है ? वह भोजन और परिश्रम के अर्थों को छोड़कर संसार के किसी शब्द का अर्थ नहीं जानता। यदि जानने के नाते कुछ जानता भी है तो यही स्त्री-पुरुष का सहवास, अधिक बच्चों की उत्पत्ति। दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह बच्चे आगे-पीछे रो रहे हैं। खाने को भोजन नहीं, पहनने को वस्त्र नहीं; पर फिर भी बच्चों की उत्पत्ति जारी है! भगवान ही हमारे इस वर्ग का कल्याण करे। वही उस वर्ग से गठित इस भारतीय समाज की रक्षा करे।

हम थोड़े-से लोग आगे बढ़े जा रहे हैं। पर अधिक लोग पीछे पिछड़े हुए रो रहे हैं। हम थोड़े से लोग सामाजिक कुरीतियों से अपना पिण्ड छुड़ाकर भिखारी की भाँति आगे भागे जा रहे हैं; पर अधिक लोग उसे अपनाये हुए हैं। उससे मिलकर अपने बाल-बच्चों का विनाश कर रहे हैं। वे जानते ही नहीं कि सामाजिक कुरीतियाँ क्या वस्तु हैं ? वे यह समझते ही नहीं कि हमारे परिवार को छोड़कर और किसी के ऊपर हमारे शुभाशुभ का भार पड़ सकता है! वे समझते हैं, हम संसार में कमाने और खाने के लिए ही भेजे गए हैं। यहाँ यही सबसे बढ़कर उत्तम पुण्य और धर्म है कि यदि बेटा चाहे आठ ही वर्ष का क्यों न हो, पर माता-पिता उसकी बहू का दर्शन कर लें। यही नहीं, वे उन्हीं के द्वारा नाती का भी मुखड़ा देख लें! बस, वे संसार में पूरे भाग्यवान हैं। उनका जीवन सफल हो गया है। कितनी अज्ञानता की

बात है ! लोगों में कैसी गहरी मूर्खता भरी हुई है ? जिस समाज और राष्ट्र के अधिक लोग अपने आठ-आठ और दस-दस वर्ष के बच्चों से यह आशा कर रहे हैं, उस समाज और राष्ट्र का क्या कल्याण हो सकता है ? उसमें कैसे भीष्म-जैसे ब्रह्मचारी और अभिमन्यु आदि की भाँति वीर बालक उत्पन्न हो सकते हैं ? वह समाज, पाप और भ्रूण-हत्याओं का भण्डार नहीं बन जायगा तो और क्या होगा ?

लोगों का यह विचार ही आज समाज का नाश कर रहा है। इसी मूर्खतापूर्ण विचार के कारण आज देश के कोने-कोने में बाल-विवाह की चक्की चल रही है। प्रति वर्ष सैकड़ों बालक और बालिकाएँ इसकी चक्की में पीसी जा रही है। यद्यपि सरकार की ओर से बाल-विवाह-निषेधक कानून बन गया है, पर वह जोरों से काम में नहीं लाया जा रहा है। वरन् बाल-विवाह की प्रथा दिनों-दिन देश में प्रबल होती जा रही है। कुछ लोगों का ध्यान है कि बाल-विवाह करना, भारतीय शास्त्रानुसार धर्म है। यदि यह सत्य है तो हमें ऐसे धर्म को भाड़ में झोंक देना चाहिये। हम उस धर्म को लेकर क्या करें, जिससे हमारा सर्वनाश तक हो गया। जिससे हम आज पतन-सागर के किनारे पहुँच कर अपने भाग्य पर आँसू बहा रहे हैं। हम तो वह दिन देखने के लिए अधिक बेचैन और व्याकुल हो रहे हैं, जिस दिन धर्म की यह अज्ञानतापूर्ण भावना लोगों के हृदय से काफ़ूर हो जायगी।

कितनी मूर्खता है! कहीं कभी कली का भी उपयोग किया जाता है? भ्रमर नादान और चेतना-शून्य होने पर भी कभी अविकसित फूल पर नहीं बैठता। किन्तु मनुष्य उससे भी गये बीते हैं। वे अपने छोटे-छोटे बालकों तक का विवाह कर डालते हैं। बालक अपनी कच्ची अवस्था में ही अपने वीर्य का विनाश करना शुरू कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके जीवन का विकास बन्द हो जाता है। उनकी शक्तियाँ कुम्हला जाती हैं। वे कद के ठिंगने और बल के भिखारी बन जाते हैं। उनकी चेतना नष्ट हो जाती है। उन्हें अनेकों प्रकार के रोग घेर लेते हैं। और यही रोग, उन्हें एक दिन संसार से भी उठा ले जाते हैं।

ऐसे बालकों से किसी का भी कोई उपकार नहीं होता। न परिवार को सुख मिलता है और न माता-पिता की आशाएँ पूरी होती हैं। माता-पिता जिस आशा का स्वप्न देखते रहते हैं, वह स्वप्न ही सिद्ध होती है। वे जन्म भर झींकते ही मर जाते हैं, पर फिर भी ऐसे लड़कों से एक सन्तान भी नहीं पैदा होती। और यदि कभी होती भी है तो वह प्रसूतिका-गृह में ही इस संसार से चल बसती है। भला, अपरिपक्व और अशक्त वीर्य से भी कभी बलशाली सन्तान पैदा होती है? ऐसी सन्तान के लिए तो ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। पर ब्रह्मचर्य की नींव तो बाल-विवाह के द्वारा तोड़ दी गई है? भारतीय समाज-सुधारकों को इस प्रथा का समूल विनाश कर ब्रह्मचर्य की नींव को सुदृढ़ बनाना चाहिये।

तभी समाज और राष्ट्र का कल्याण हो सकेगा। बाल-विवाह के ऊपर अपने विचारों को प्रकट करते समय स्वामी दयानंद ने कहा—'जिस देश में ब्रह्मचर्य-विद्या रहित बाल्यावस्था में विवाह होता है वह देश दुःख में डूब जाता है। क्योंकि ब्रह्मचर्य-विद्या के ग्रहण-पूर्वक विवाह के सुधार से सुधार और बिगाड़ से बिगाड़ हो सकता है।'

वृद्ध-विवाह

बाल-विवाह की भाँति वृद्ध-विवाह का भी भयानक रोग समाज में फैला हुआ है। इस रोग से भी समाज जर्जर और क्षीण-प्राय हो रहा है। प्रति वर्ष सैकड़ों दीन-हीन अबोधी बालिकाएँ, इस प्रथा के द्वारा पाप की भयङ्कर अग्नि में झोंकी जाती हैं। मृत्यु के मुख में जाने वाले कामी बूढ़े, धन और शक्ति के मद में उन बालिकाओं को अपना शिकार बना लेते हैं। वे उनके ऊपर असमय काल ही में काम के प्रहारों की वर्षा शुरू कर देते हैं। जिस प्रकार तुषार के पड़ने से कलियाँ मुर्झा जाती हैं, उसी प्रकार ये अबोध बालिकाएँ भी जीवन से रहित हो जाती हैं। उनके विकास की गति बन्द हो जाती है। उनके सौन्दर्य की दुनिया उजड़ जाती है। पर क्या इन बालिकाओं को पाप की अग्नि में झोंकने वाले बूढ़े कुशलपूर्वक रहते हैं? नहीं, उनके जीवन में भी एक प्रकार का जहर घुस जाता है। प्राचीन शास्त्रकारों का कथन है—

'वृद्धस्य तरुणी विषम् ।'

वृद्ध पुरुष के लिए तरुणी विष के समान होती है। सचमुच आग और तिनके का सामना रहता है। वृद्धावस्था में मानव-शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। पर वह इसका ख्याल नहीं करता और अपने सुखों के लिए एक निरी बालिका का हाथ पकड़ लेता है। इसका परिणाम क्या होता है ? वही जो होना चाहिये। बूढ़ा आदमी थोड़े-ही दिनों के बाद इस संसार से चल बसता है। और फिर उस बालिका के द्वारा समाज में पापों की सृष्टि होने लगती है। जिस समाज में अस्सी-अस्सी वर्ष के वृद्ध अपनी काम-वासना को नहीं सँभाल सकते, उस समाज में पन्द्रह-पन्द्रह वर्ष की बालिकाओं से ब्रह्मचर्य की आशा रखना अज्ञानता नहीं तो और क्या है ?

आज इस वृद्ध-विवाह के द्वारा ही समाज में भयंकर अनाचार फैला हुआ है। जहाँ ही देखिये, वहीं पाप मुँह बाये हुए खड़ा है। विधवाओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जा रही है। वेश्याएँ भी अधिक संख्या में उत्पन्न होती जा रही हैं। छोटे-छोटे नवजात बालक चिथड़ों में लपेटे हुए नदी और नालों में पाये जा रहे हैं। यह सब क्या है ? इसी वृद्ध-विवाह का कुफल ! यदि देश में यह अनाचार फैलता ही रहा, यदि इसकी बढ़ती हुई प्रगति को बन्द न किया गया तो देश का महाविनाश हो जायगा। इसमें एक भी ऐसा बालक देखने को न मिलेगा जो मेधावी

और साहसी हो। चारों ओर मुर्दा-दिली की बस्ती-सी बस जायगी। एक बार इसी वृद्ध-विवाह के शोचनीय परिणामों पर दुःख प्रकट करते हुए स्वामी श्रद्धानन्दजी ने कहा था—'वृद्ध-विवाह से विधवाओं की संख्या बढ़ रही है। इनके कारण समाज की बड़ी अमर्यादा हो रही है, पर द्विजाति लोग इनका उद्धार करने से डरते हैं। इसलिए हमारा यही अनुरोध है कि ४० वर्ष की अवस्था के बाद किसी पुरुष का विवाह न होने देना चाहिये।'

वृद्ध-विवाह से अनेकों हानियाँ होती हैं। समाज और राष्ट्र बुरी भावना का घर-सा बन जाता है। दुनिया के किसी भी देश में वृद्ध-विवाह की इस कलुषित प्रथा का उतना प्रचार नहीं, जितना हमारे देश में है। वासना ही यहाँ के अधिकांश मनुष्यों का जीवन है। गुलामी की भावना के कारण उन्हें अपना अस्तित्व भूल गया है। वे बुढ़ापा की अवस्था में भी दिन-रात बोतलें ढुलकाने और सुन्दरियों की लालसा किया करते हैं। ऐसे पुरुष समाज और अपने परिवार के लिए भी विषैले कीड़े हैं। इन कीड़ों का, जितना ही जल्द नाश हो जाय, अच्छा है। यहाँ हम वृद्ध-विवाह से होनेवाली कुछ हानियों का उल्लेख कर रहे हैं—

१—वृद्ध-विवाह से देश में विधवाओं की वृद्धि होती है।

२—इससे राष्ट्र के अन्दर, वेश्याओं की संख्या बढ़ती है।

३—पाप और अनाचार को बढ़ने में सहायता मिलती है।

४—व्यभिचार का बाजार गर्म होता है।

५—परिवार का समूल विनाश हो जाता है।

६—सन्तानें कमजोर, विलासी और दुर्गुणों से भरी हुई होती हैं।

७—आत्म-हत्या तथा भ्रूण-हत्या प्रतिदिन के कार्य हो जाती हैं।

८—समाज और राष्ट्र निर्बल हो जाता है।

९—देश में ब्रह्मचारियों की कमी हो जाती है।

१०—महामारी, हैजा आदि रोगों का प्रसार होता है।

वेश्या-नृत्य

हमारे समाज में, युवकों के सुधारने की शक्ति नहीं। इसमें आज दिन ऐसे-ऐसे कानून और विधान प्रचलित हैं, जिनसे युवकों की शक्तियों का निर्माण नहीं, वरन् उनका विनाश होता है। इनके झूठे और विडम्बना पूर्ण विधानों से ही युवकों में ऐसी कुधारणाओं का समावेश होता है, जिनसे उनकी जीवन-शक्तियों का नाश होता है। युवक स्वभावतः उच्छृंखल प्रकृति के होते हैं। उनकी इन्द्रियाँ चारों ओर दौड़ती-सी रहती हैं। मन और हृदय उन्माद-सागर में लहराता-सा रहता है। अतः उस समय आवश्यकता होती है युवकों के देख भाल की। उनके चंचल मन को एकाग्र रखने के लिए इसकी जरूरत होती है कि उनके पास ऐसे ही साहित्य तथा ऐसे ही साधन रहें, जिनसे उनका मन चंचल न हो। पर जब माता-पिता स्वयं उनके

सामने ऐसे साधन लाकर उपस्थित कर देते हैं जिन्हें देखकर उनके असंयमित मन का बाँध टूट जाता है और वे उसकी प्राप्ति में अपना सर्वस्व तक खो डालने के लिए तैयार हो जाते हैं, तो इसमें किसका दोष ? समाज, माता-पिता अथवा युवकों का ?

यह सभी जानते हैं कि समाज की गोद वेश्याओं से भरी हुई है। और यह भी किसी से छिपा नहीं कि इन वेश्याओं से समाज की कितनी गहरी क्षति हो रही है। पर समाज यदि इनका समूल विनाश करना चाहे तो नहीं कर सकता। पहले तो उसमें इतनी शक्ति नहीं है, और दूसरे यह बात कुछ असम्भव-सी है। हाँ, वह इतना अवश्य कर सकता है कि इनकी बढ़ती हुई संख्या में कमी पड़ जायगी और इनका स्वेच्छाचार कुछ कम हो जायगा। वेश्याओं के सुधार का यहाँ प्रश्न नहीं है। यहाँ तो प्रश्न है, युवकों के सुधार का। युवक जहाँ अन्यान्य कुरीतियों से नष्ट हो रहे हैं, वहाँ उनके विनाश का कारण ये वेश्याएँ भी हैं। वेश्याओं का काम खुले आम संसार में पाप बढ़ाना है। वे सारे संसार को चैलेंज देकर मानवी-शक्तियों का विनाश करती हैं। उनके ऊपर किसी सरकार का नियंत्रण नहीं। उनकी इस अमानुषिकता के लिए समाज की ओर से कोई विधान नहीं। वे स्वतंत्रता-पूर्वक पाप के मार्ग पर आगे बढ़ती जा रही हैं। सैकड़ों नवयुवकों को, लाखों प्रौढ़ मनुष्यों को भी उसी ओर ढकेले लिये जा रही हैं। अफसोस ! फिर भी हम उन्हें अपने समाज में स्थान देते हैं

और हम उन्हें आदर-सम्मान से बुलाकर अपने बीच उनका नृत्य कराते हैं। इसका यह तात्पर्य हुआ कि हम भी मनुष्यता का खून करते हैं। हम भी राक्षसी-वृत्तियों के प्रचार में सहायक बनते हैं।

वेश्याओं का यही व्यापार है। इसी की कमाई पर उनके जीवन का निर्वाह होता है। वे पाप का ही पैसा खातीं और उसी पैसे से अपना शृंगार करती हैं। ऐसा कोई भी भारतीय घर नहीं, जिसमें विवाह-शादी के अवसर पर वेश्या नृत्य की निन्दनीय प्रथा न हो। हम बड़े उत्साह और हर्ष से ऐसे अवसरों पर निमंत्रण देते हैं। इसका परिणाम क्या होता है? सैकड़ों युवक केवल एक दिन-रात ही में उनके विलासी नयनों के शिकार बन जाते हैं और उसके पीछे कुछ दिनों में अपना सम्पूर्ण तक नाश कर डालते हैं। एक स्थान की बात नहीं, यह आज सारे देश में होता है। सारे देश में पाप की यही लहर चल रही है। मैं स्वयं ऐसे अनेकों युवकों को जानता हूँ, जो अपने माता-पिता की इस थोड़ी-सी भूल के कारण ही अपना जीवन वेश्याओं के चरणों पर लुटा रहे हैं। एक सभ्य घराने के युवक की कहानी इस प्रकार है। कहानी दयनीय है। इससे नवजवानों को शिक्षा भी मिल सकती है—

'वे युवक हैं। घर के साधारण स्थिति के मनुष्य हैं। शिक्षित हैं। माता-पिता भाई-बन्धु भी हैं, पर किसी बारात में

वेश्या के प्रेम ने उनके हृदय में घर कर लिया। और वे उसके गुलाम बन गये। घर की आर्थिक अवस्था अच्छी न होने से वे द्यूत आदि दुर्गुणों के शिकार हो गये। यही नहीं, माता-पिता के रक्खे हुए रुपयों को भी धीरे-धीरे गायब करने लगे। माता-पिता को उनकी इस प्रवृत्ति का पता चला। उन्होंने उनके सुधार के लिए उनका विवाह कर दिया। घर में स्त्री भी आ गई। पर उनका सुधार न हुआ। वे लोगों से रुपये कर्ज लेकर तथा अपनी नव-विवाहिता स्त्री के आभूषणों द्वारा उस राक्षसी की उदर-पूर्ति करने लगे। सुनता हूँ, इस समय उनके माता-पिता उन्हीं के द्वारा किये हुये ऋण से लदे हुए हैं और स्त्री दुःखी तथा उदासीन है। वह रो-रोकर उन लोगों से कहा करती है कि तुम लोगों ने जान-बूझकर मुझे इस कुएँ में क्यों ढकेला।'

यह एक साधारण-सी कहानी है। पर इसका फल स्पष्ट है। इसी भाँति अनेकों घरों में पाप का यह अभिनय हो रहा है। अनेकों चहार-दीवारियों के अन्दर भोली और अबोध बालिकाएँ सताई जा रही हैं। उनके पति बुरी तरह से वेश्याओं के सिकंजे में फँसे हुए हैं। माता-पिता भी कान में तेल डाले हुए हैं। ऐसे युवकों से समाज का क्या भला हो सकता है। उनका पुरुषत्व वेश्या की पाप-ज्वाला में भस्म हो रहा है। भर्तृहरि ने लिखा है—

वेश्यासौमदन-ज्वाला, रूपेन्धनसमेधिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते, यौवनानि धनानि च॥

'वेश्यागमन, वेश्यारूपी धन से सजाई हुई कामाग्नि की ज्वाला है। कामी पुरुष इसमें अपने यौवन और धन की आहुति देते हैं।'

भर्तृहरिजी का यह कथन बिलकुल ठीक है। अतः समाज के नियन्त्रण-द्वारा अपनी युवक-शक्ति को वेश्याओं की पापाग्नि में जलने से रोकना चाहिये। वेश्या-नृत्य की प्रथा उठाने से यह बहुत कुछ अंशों में कम हो सकता है।

६—वीर्य-रक्षा के नियम

अब तो यह भली-भाँति विदित हो गया होगा कि मानव-शरीर में वीर्य ही सर्वप्रधान वस्तु है। वीर्य ही शरीर का स्वास्थ्य और वीर्य ही शरीर का सौंदर्य है। वीर्य ही शक्ति और प्रताप है। वीर्य ही साहस और चेतना है। अतः सभी को अपनी इस सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिये। कोई साधु हो या सन्यासी, अथवा गृहस्थ हो या वैरागी; सब के लिए वीर्य-रक्षा महत्त्व की वस्तु है। गृहस्थ-जीवन में वीर्य-रक्षा ही कल्याण की वस्तु है। यही वह सुख लाती है, जिसे देखकर प्रत्येक गृहस्थ आनन्द से गद्गद हो जाता है। अर्थात् वीर्य-रक्षा ही से सबल और सुदृढ़ सन्तान हो सकती है। वैरागी-साधुओं के लिए भी जितेन्द्रिय होना अत्यन्त आवश्यक है। उनकी यही दुनिया है, यही संसार है। वे रात-दिन ईश्वर की सेवा में तन्मय रहकर मुक्ति की खोज में

लगे रहते हैं। पर मुक्ति और कोई चीज नहीं ? प्राचीन शास्त्र-कारों के मतानुसार वीर्य-रक्षा ही तपस्याओं में अत्यन्त श्रेष्ठ तपस्या है। इससे मनुष्य को मुक्ति मिलती है। जब वीर्य की इतनी महिमा है, जब उसका प्रचण्ड प्रताप इस भाँति मानव-शरीर में फैला हुआ है, तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उसकी रक्षा के नियमों से पूर्णरूप से परिचित रहें। इसी उद्देश्य से यहाँ हम कुछ नियमों का उल्लेख कर रहे हैं। इन नियमों का पालन कर कोई भी मनुष्य ब्रह्मचारी बनकर संसार में अपनी मानव-शक्तियों की रक्षा कर सकता है।

पवित्र-विचार

विचार मन की एक अद्भुत शक्ति है। मनुष्य इसी शक्ति के संकेत पर सदैव नाचा करता है। जैसा उसके मन में विचार पैदा होता है, वैसा ही वह काम भी करता है। संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं, जिसके हृदय में विचार न उठते हों। संसार का कोई काम विना विचार के सम्पादित कभी नहीं होता। प्रत्येक काम में इसी विचार का आश्रय लेना पड़ता है। अतः इस बात की आवश्यकता होती है कि मन में उठनेवाले विचार उन्नत और कल्याणमय हों। यदि विचार उत्तम होंगे, यदि उनमें कल्याण-कारी शक्तियाँ रहेंगी तो जीवन में सुख प्राप्त होगा। सारी वाधाएँ दूर हो जावेंगी। संसार में लोगों की ओर से सहानुभूति

मिलेगी। और जीवन में वह सन्तोष प्राप्त होगा, जिसकी बड़े-बड़े लोग कामना किया करते हैं।

पवित्र विचार ही उन्नति के साधन हैं। जिसके हृदय में सदैव पवित्र विचार उठते रहते हैं, वह कभी पापी और व्यभिचारी नहीं होता। उसका मन अधर्म की भावनाओं पर कभी भी विश्वास नहीं कर सकता। इन्द्रियाँ उसके वश में रहेंगी। वह ब्रह्मचर्य-व्रत-द्वारा अपने शरीर की शक्तियों की भली प्रकार रक्षा कर सकता है। अमेरिका के एक शरीर-वैज्ञानिक का कथन है कि मनुष्य का विचार ही उसका साथी है। वही उसे पापी बनाता है और वही उसे धर्मात्मा। इसलिए मनुष्य को चाहिये कि वह अपने इस साथी से बहुत कुछ सोच-समझकर मैत्री स्थापित करे। सचमुच, विचार मनुष्य के साथी होते हैं। इसीलिए तो वह उनके संकेतों पर घूमा करता है।

ब्रह्मचर्य-व्रत के लिए पवित्र विचारों की अत्यन्त आवश्यकता है। प्रायः यह देखा जाता है कि मनुष्य की इन्द्रियाँ किसी वस्तु या दृश्य को देखकर विचलित हो जाती हैं और पाप की ओर झुक पड़ती हैं। पर यदि हृदय में पवित्र विचार रहेंगे तो ऐसा कभी नहीं होगा। पहले तो मनुष्य पाप की ओर जायगा ही नहीं; यदि जाने का प्रयत्न भी करेगा तो नहीं जाने पावेगा। उसके पवित्र विचार उसे रोक देंगे और वह लज्जित होकर अपने उस निन्दनीय पथ को छोड़ देगा। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के लिए

यह आवश्यक है कि वह पवित्र विचारवाला बने। पवित्र विचार ही संसार में मोक्ष और मुक्ति के साधन हैं।

(समभाव) मातृ-भाव

संसार में माता का स्थान अत्यन्त ऊँचा है। माता हमारी जननी है। हम उनके गर्भ से पैदा होते हैं। उसके स्तनों को पी-कर बड़े होते हैं। उसमें हमारी भक्ति है। उसे हम देवी और कल्याणी की भाँति पवित्र मानते हैं। दुनिया में हम सबको अविश्वास की दृष्टि से देख सकते हैं, पर माता सदैव हमारे विश्वास की स्थायी वस्तु है। हमारे में इतनी शक्ति नहीं कि हम उसे अविश्वास की दृष्टि से देख सकें। हमारे में इतना बल नहीं कि हम उसे सन्देह की दृष्टि से देख सकें। उसकी शक्ति और उसका बल संसार में सबसे बड़ा बल है। संसार की सम्पूर्ण शक्तियों को उसके सामने झुकना पड़ता है। न तो उसके समान कोई पवित्र है और न कोई सत्य। संसार का प्रत्येक प्राणी अपनी माता को पवित्रता की दृष्टि से देखता है। पर ब्रह्मचारी को संसार की प्रत्येक स्त्री को माता की भाँति ही पवित्र समझना चाहिये। तभी वह संसार में पूरा ब्रह्मचारी बन सकेगा। तभी उसके ब्रह्मचर्य की शक्तियाँ संसार में टिकी रह सकेंगी और तभी वह उन कार्यों को पूरा भी कर सकेगा, जिनकी एक सत्यनिष्ठ ब्रह्मचारी से आशा की जाती है।

एक श्लोक का पद है—'मातृवत् परदारेषु।' अर्थात् दूसरी

स्त्रियों को भी माता के समान समझो। किसी स्त्री को कभी बुरी दृष्टि से न देखो। किसी के रूप और लावण्य को अपने मन में न टिकने दो। यदि कभी ऐसा हो तो समझ लो, यह भी तुम्हारी माता है। इसमें भी माता की शक्तियाँ छिपी हुई हैं। बस, हृदय से पाप की वासना मिट जायगी और हृदय दर्पण की भाँति स्वच्छ हो जायगा। माता नाम ही पवित्र शक्ति है। यह शक्ति बड़े-बड़े पापों का विध्वंस कर डालती है। यदि तुम किसी में अपने हार्दिक विश्वासों को स्थिर करना चाहते हो, तो तुरत उसे माता मान लो। बस, इन दो अक्षरों से ही तुम्हारा हृदय पवित्रता से भर जायगा। तुम्हारे मन का सारा सन्देह दूर हट जायगा।

पाप का बीजारोपण अधिकतर आँखों के द्वारा ही होता है। आँखें ही सबसे पहले पाप की ओर प्रवृत्त होती हैं। इसलिए किसी स्त्री से बातें करते समय तुम अपनी आँखों को नीची रक्खो। इन्हें किसी तरह बहकने न दो। स्त्रियों के समाज में अधिक न जाओ। यदि जाओ भी तो इस भाव को लेकर जाओ कि वे सब तुम्हारी माताएँ हैं। उनके किसी खुले अंग को भी न देखो। और यदि सहसा देख भी लो तो समझो ये तुम्हारी माता के अंग हैं। इससे तुम्हारे चित्त की वासना हट जायगी। और तुम पाप में गिरने से बच जावोगे। स्वामी दयानन्द जी के मातृ-भाव के सम्बन्ध में इसी प्रकार की एक छोटी-सी घटना पाई

जाती है। एक बार एक ब्रह्मचारिणी स्त्री स्वामी दयानन्द जी के पास गई। और जाकर कहने लगी—'मैं आवाल ब्रह्मचारिणी हूँ और आप एक आदर्श ब्रह्मचारी हैं। अतः यदि आप मुझसे विवाह कर लें तो मेरे गर्भ से आप ही ऐसा लोकोपकारी और दिग्विजयी पुत्र उत्पन्न होगा।' इस पर स्वामी जी ने उसे उत्तर दिया—'हे माता ! तुम मुझी को क्यों नहीं अपना पुत्र मान लेतीं !' स्त्री लज्जित होकर लौट गई। यह है, मातृ-भाव ! प्रत्येक नवयुवक को स्वामी जी की इस जीवन-घटना से शिक्षा लेनी चाहिये। यही वीर्य-रक्षा का मूलमंत्र है।

रहन-सहन

संसार विलास का घर है। यहाँ ऐसी अनेकों शृंगार की वस्तुएँ भरी पड़ी हैं, जो हमारी आँखों के सामने आकर हमें आश्चर्य में डाल देती हैं। इन्हीं वस्तुओं से हमारा मन पतित भी होता है। शृंगारमयी वस्तुएँ स्वभावतः कामोत्तेजक हुआ करती हैं। जब हम इन वस्तुओं का उपयोग करते हैं तो हमारे हृदय में एक विचित्र तूफान और ववण्डर-सा आने लगता है। और हम उस तूफान तथा ववण्डर को शान्त करने के लिए पाप की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। टालस्टाय ने एक स्थान पर लिखा है कि संसार में वही आदमी सबसे बड़ा भाग्यवान है, जिसके मन की प्रवृत्तियों को संसार की शृंगारिक वस्तुएँ अपनी ओर खींचने में असमर्थ-सी रहती हैं।

वास्तव में वही मनुष्य धन्य है, जो इनसे अपना पिण्ड छुड़ा कर अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर सका हो। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए रहन-सहन की पवित्रता और सादगी की विशेष आवश्यकता हुआ करती है। संसार में जितने बड़े-बड़े मनुष्य हुए हैं, वे सभी साधारण चाल-ढाल वाले थे। सादी रहन-सहन से मनुष्य के शरीर में एक प्रकार का आत्मबल-सा पैदा होता है। महात्मा गाँधी आज हमारी आँखों के सामने हैं। उनका जीवन कितना सादा है। उनकी रहन-सहन कितनी पवित्रता से भरी हुई है। शरीर पर एक कुर्त्ता भी नहीं रहता, पर उस महात्मा के शरीर में कितनी शक्तियाँ समाई हुई हैं। क्या यह सत्य नहीं कि उन्होंने सांसारिक शक्तियों पर विजय प्राप्त कर ली है। पर यह किसका परिणाम है? ब्रह्मचर्य का। सादी रहन-सहन-द्वारा उन्होंने अपने ब्रह्मचर्य की दृढ़तापूर्वक रक्षा की है। अतः यदि तुम भी दुनिया में महान् पुरुष बनना चाहते हो, तो ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करो। ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन के लिए शृंगारमयी वस्तुओं से दूर रहो। बालों में सुगन्धित तेल न लगाओ। इसका व्यवहार न करो। पान न खाओ। रंगीन और प्रकृति बिगाड़ने वाले वस्त्रों से दूर रहो। इन वस्तुओं से मन में बुरी भावनाएँ पैदा होती हैं। और यही तुम्हें कुपथ पर ले जाकर तुम्हारा सर्वनाश करती हैं।

प्रातःकाल उठना

प्रातःकाल उठने से अनकों लाभ होते हैं। एक अनुभवी

मनुष्य का कथन है कि प्रातःकाल वे हवाएँ चला करती हैं जिनसे मनुष्य की जीवन-शक्तियों को आरोग्य-लाभ और चेतना को विकसित होने में सहायता मिलती है। वास्तव में यह कथन ठीक है। प्रायः यह देखा गया है कि जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर स्व-च्छन्द वायु का सेवन किया करते हैं, वे अधिक स्वस्थ और विचारशील होते हैं। उनके जीवन को आलस्य और उदासीनता के भाव तो छू तक नहीं पाते। उनका शरीर सदैव ताजा बना रहता है। विचार-शक्तियाँ भी हिलोरें मारती रहती हैं। अमेरिका के एक वैज्ञानिक डाक्टर ने एक स्थान पर लिखा है कि यदि तुम स्वस्थ होना चाहते हो तो प्रातःकाल उठने के अभ्यासी बनो। केवल एक इसी अभ्यास से शरीर के बड़े-बड़े रोगों तक का नाश हो जाता है।

हमारे शास्त्रों में भी इसकी गुरु महिमा लिखी हुई है। मनुस्मृति में लिखा हुआ है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत्।
कायक्लेशांश्च, तन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेव च॥

'अर्थात ब्राह्म-मूहूर्त में उठकर धर्म और अर्थ का चिन्तन करना चाहिये। अपने शरीर के दुःखों और उनके मूल कारणों पर विचार करना चाहिये। और वेदों के तत्त्वों का अध्ययन करना चाहिये।' मनुस्मृति में ऐसा क्यों लिखा गया है? इसलिए कि ब्राह्ममुहूर्त से बढ़कर और कोई पवित्र समय नहीं है। इस काल

से बढ़कर और कोई आरोग्यवर्द्धक काल नहीं। प्रकृति का कोना-कोना पवित्रता से भरा रहता है। पत्ते-पत्ते से आरोग्यवर्द्धक हवा निकलती रहती है। इस वायु से मनुष्य के मस्तिष्क का विकास होता है। आलस्य दूर भागता है। हृदय में सदाचार के उत्तम विचार उत्पन्न होते हैं। वीर्य-रक्षा में सहायता मिलती है। अतएव प्रत्येक ब्रह्मचारी और सदाचारी मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह प्रातःकाल उठने का अभ्यासी बने।

उषःपान

उषः की लाली छिटककर सारे संसार के अन्धकार को दूर कर देती है। पक्षियाँ चहचहाने लगती हैं। भ्रमर गुनगुनाने लगते हैं। और प्रकृति की गोद में खेलते हुए फूल विहँस उठते हैं। एक ओर से दूसरी ओर जीवन की बहार दौड़ जाती है। जिस प्रकार प्रकृति के ऊपर इस ऊषा का प्रभाव पड़ता है, उसी प्रकार मानव-शरीर भी इसके प्रभावों से वंचित नहीं रहने पाता। भीतर-ही-भीतर उसका प्रभाव इस पर भी पड़ता है। जो लोग उषः की मर्यादा को समझते हैं और यह जानते हैं कि उषः की लाली जिस प्रकार प्रकृति में एक नई जान डालती है, उसी प्रकार मानव-शरीर में भी वह अपना वही जीवन डालती है; वे कभी उषा की लाली से लाभ उठाने से वंचित नहीं रहते। यही कारण है कि उनका शरीर भी फूलों की भाँति ताजा और हँसता हुआ रहता है। पर जो इसको

नहीं जानते और उषा के कई घण्टे पश्चात् भी अपनी चारपाई पर पड़े रहते हैं, उनका जीवन दुःखी और भार-स्वरूप हो जाता है। वे अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। आयुर्वेद का कथन है—

सवितुः समुदयकाले, प्रसृती सलिलस्यपिवेदष्टौ।
रोगजरापरिमुक्तो, जीवेत्वत्सरशतंप्रम॥

जो मनुष्य सूर्य के उदय होने से कुछ पहले आठ अँजुली जल पीता है, वह रोग और वृद्धता से रहित होकर सौ वर्षों से भी अधिक जीवित रहता है। यह है, उषःपान और उसका महत्व! इससे मानव-शरीर का विकास होता है। शरीर के समस्त रोग दूर हो जाते हैं। वीर्य-धारण में सहायता मिलती है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को नियम-पूर्वक उषःपान करना चाहिये। इससे होनेवाले कुछ लाभ इस प्रकार हैं—

१—कामेन्द्रिय शांत होती है।

२—वीर्य-सम्बन्धी रोगों का विनाश होता है।

३—शरीर में गर्मी की मात्रा नहीं बढ़ती।

४—बुद्धि और शक्ति का प्रसार होता है।

५—अजीर्ण और स्वप्न-दोष इत्यादि रोग नहीं होते।

मल-मूत्र त्याग

शरीर का संचालन एक नियम-गति से हुआ करता है। शरीर के प्रत्येक कामों के लिए प्रकृति की ओर से समय निर्द्धारित है। जिस प्रकार भोजन का समय है, उसी प्रकार मल-मूत्र

के त्याग का भी समय है। जब हम प्रकृति के इन नियमों का उल्लंघन करते हैं, तभी हमारे शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। तभी हमें अनेकों बार मल-मूत्र त्याग करने की आवश्यकता पड़ती है और तभी हम अजीर्ण आदि जैसे भयानक रोगों के शिकार बन जाते हैं। अतः स्वास्थ्य की सबलता को स्थिर रखने के लिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम प्रकृति के इन नियमों के गुलाम बनें।

प्रतिदिन सूर्योदय से पहिले हमें अपनी चारपाई छोड़ देनी चाहिये। और सूर्योदय से पहिले ही मल-मूत्र का त्याग कर देना चाहिये। दिन में केवल दो ही बार शौच जाना चाहिये—सवेरे और शाम। मनुस्मृति में लिखा है—

मूत्रोच्चारसमुत्सर्गं दिवाकुर्यादुत्तरमुखः।
दक्षिणाभिमुखोरात्रौ सन्ध्ययोश्च यथा दिवा।

दिन में उत्तर मुख करके तथा रात में दक्षिण मुख करके हमें मल-मूत्र का त्याग करना चाहिये। इसी प्रकार के प्रमाण वैद्यक-शास्त्र में भी पाये जाते हैं। वैद्यक-शास्त्र के मतानुसार शौच खुले मैदान ही में जाना चाहिये। इससे बस्ती में गन्दगी नहीं फैलती और वायु-सेवन का अपूर्व लाभ होता है। यही कारण है कि प्राचीन काल में भारतीय ऋषि-मुनि इसी नियम का पालन किया करते थे। वे कभी बन्द कमरे में शौच नहीं जाते थे। पर आजकल तो लोग घर में खाते और घर में ही शौच जाते हैं।

बहुत लोग बड़े आलसी होते हैं। उन्हें मल-मूत्र त्याग की आवश्यकता मालूम भी पड़ती है, पर वे मल-मूत्र का ठीक समय से त्याग नहीं करते। इससे उनके शरीर में अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न होने लगते हैं। वीर्य कमजोर होकर स्वप्नदोष में बाहर निकल पड़ता है। मन्दाग्नि हो जाती है। अपान-वायु बिगड़कर मैले को ऊपर की ओर चढ़ाने लगती है। यह मैला जठराग्नि में पड़कर पचता है और सारे शरीर के रक्त को दूषित बना देता है। वैद्यक में लिखा है—'सर्वेषामेवरोगाणां निदाने कुपिता मलः।' अर्थात् संसार के समस्त रोग केवल मल-मूत्र के बिगड़ने से ही पैदा होते हैं। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को मल-मूत्र के त्याग में सावधानी रखनी चाहिये। इसके लिए एक निश्चित समय होना चाहिये। उस समय शौच जाना आवश्यक है। यदि इसमें भूल होगी तो स्वास्थ्य का विनाश हो जायगा। सिर में भयङ्कर दर्द उत्पन्न होने लगेगा। आँखों की ज्योति मन्द हो जायगी। पाचन-शक्ति नष्ट हो जायगी। और पेट के भीतर अनेक भीषण रोगों की नींव पड़ जायगी। फिर न तो हम ब्रह्मचारी हो सकेंगे और न अपने स्वास्थ्य को ही सबल बना सकेंगे। उस समय हमारे सामने केवल एक ही प्रश्न रहेगा कि हाय भगवान! अब क्या करें? किन्तु भगवान् का इसमें क्या अपराध! कुल्हाड़ी तो हमने अपने हाथों, अपने ही पैरों में मारी है। फिर उसका कुफल कौन भोगेगा? कौन उसकी पीड़ा को बर्दाश्त करेगा? भगवान् ने तो हमें यह कह

नहीं दिया था कि तुम भोजन किये जाओ और शौच न जाओ। प्रकृति के नियमों पर आक्रमण कर अपना विनाश करो! यह तो हमारा कर्तव्य था। अब हमें ही उसका फल भोगना पड़ेगा। अतः प्रत्येक स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य-प्रेमी मनुष्य का कर्तव्य है कि वह अपने मल-मूत्र का त्याग ठीक तथा नियमित समय से करे।

पेट की सफाई

शरीर के सम्पूर्ण रोग पेट से ही उत्पन्न होते हैं। और पेट में रोग तभी उत्पन्न होता है, जब मल-मूत्र की प्राकृतिक क्रिया बिगड़ जाती है। इसीसे मनुष्य का ब्रह्मचर्य-व्रत भंग होता है और वह अस्वस्थ बनकर संसार में भार-स्वरूप बन जाता है। इसलिए प्रत्येक ब्रह्मचारी को अपने पेट की सफाई में तन्मय रहना चाहिये। यहाँ हम निम्नलिखित कुछ ऐसे नियमों का उल्लेख कर रहे हैं, जिनसे सहज ही में पेट की सफाई की जा सकती है—

१—सूक्ष्म और हलका भोजन करो। इससे न तो उदर में विकार उत्पन्न होगा और न अजीर्ण होने से पाचन-शक्ति ही कम होगी। चित्त प्रसन्न और स्वस्थ रहेगा। किया हुआ भोजन भली-भाँति पच सकेगा। शरीर की रक्त-नाड़ियाँ ठीक रहेंगी। खून का चढ़ाव-उतार अपने नियमित गति से होता रहेगा।

२—कब्ज का कारण अधिक भोजन है। अतः जब कभी उदर में कब्ज की शिकायत हो तो सब से पहिले भोजन को कम कर दो। कोई ऐसी वस्तु न खाओ, जिससे शरीर में विकार की

वृद्धि हो। कब्ज होने पर प्रातःकाल नमक मिलाकर पानी को गर्म कर के पी डालो। इससे दस्त होंगे और पेट साफ हो जायगा। पर, कब्ज की शिकायत को दूर करने का सबसे उत्तम साधन भोजन की न्यूनता है।

३—सवेरे नियमित रूप से सूर्योदय के पहिले आठ घूँट ठण्ढा जल पीओ। इससे कभी भी कब्ज न होगा और शरीर भी स्वस्थ जान पड़ेगा।

४—दिन में दो-तीन बार अपने पेट को इधर-से-उधर हिलाओ। इससे भोजन पच जायगा और पैदा होनेवाले विकार नष्ट हो जायँगे।

५—प्रतिदिन कुछ न कुछ परिश्रम अवश्य करो। यदि परिश्रम न करोगे तो भोजन न पचेगा और कब्ज की शिकायत हो जायगी। कब्ज वीर्य-नाश का एक कारण है। अतः ब्रह्मचारियों को इससे बचना चाहिये।

गुप्तेन्द्रियों की स्वच्छता

गुप्तेन्द्रियों की स्वच्छता अत्यन्त आवश्यक है। इससे मन के विकार दूर होते हैं। शरीर में एक प्रकार की शक्ति-सी मालूम होती है। और दाद, खुजली आदि भयङ्कर रोग भी नहीं होने पाते। कारण यदि इन इन्द्रियों में मल रह जाता है तो वही इन रोगों की जड़ बन जाता है। अतः हम जिस भाँति प्रतिदिन अन्य अंग-

प्रयङ्गों की सफाई करते हैं, उसी प्रकार हमें अपनी शरीर के गुप्तेन्द्रियों की भी प्रतिदिन सफाई करनी चाहिये।

गुप्तेन्द्रियों से तात्पर्य गुदा और मूत्रेन्द्रिय से है। शौच के समय गुप्त-द्वार को अच्छी तरह धो लेना चाहिये। इससे मल साफ हो जाता है और वीर्य में शीतलता आती है। कारण वीर्य-वाहिनी नाड़ी गुदा-द्वार से मिली हुई है। इसी समय मूत्रेन्द्रिय को भी भली-भाँति साफ कर लेना चाहिये; पर मूत्रेन्द्रिय को अधिक मल कर न धोवे। इससे नसमें उत्तेजना हो जाती है। और वीर्य गिर जाता है। मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग पर शीतल पानी की धार छोड़नी चाहिये। मूत्रेन्द्रिय से शरीर की सारी नसें मिली रहती हैं। अतः इसे ठंढे पानी से शीतल करना समस्त शरीर के लिए अत्यन्त लाभकारी होता है।

ब्रह्मचर्य-पालन की यह सबसे बड़ी उत्तम रीति है। जिस समय शिश्न में उत्तेजना पैदा हो और मन में पाप की वासनाएँ अपना प्रभाव जमाने लगें, उस समय यदि शिश्न के अग्रभाग पर शीतल पानी की धार छोड़ दी जाय, तो काम-वासना अपने आप शान्त हो जायगी। मन का डावाँडोल मिट जायगा। और शिश्न शिथिल होकर गिर जायगा। प्रत्येक ब्रह्मचारी को इस रीति का अवलम्बन करना चाहिये।

हमारे देश में पहले एक प्रथा थी। लोग पेशाब करने के समय लोटे या गिलास में जल लेकर पेशाब करने जाया करते

थे। और पेशाब करने के बाद जल के धार को शिश्न पर छोड़कर उसे धो लिया करते थे। इस समय भी बहुत से लोग ऐसा किया करते हैं। धर्मशास्त्रों में इसका उल्लेख भी है। इससे शरीर पवित्र रहता है और शिश्न की उत्तेजना शान्त रहती है। मन में बुरे विचार नहीं उत्पन्न होते। सदाचार की जड़ सुदृढ़ होती है। पर, आज इस प्रथा का विनाश-सा हो चला है। अब लोग न तो अपने गुप्तेन्द्रियों की स्वच्छता पर ध्यान देते हैं और न उसका उचित उपयोग करते हैं। यही कारण है कि इस समय रोग और व्यभिचार का बाजार गर्म है। ब्रह्मचर्य का नाम तक देखने को नहीं मिलता। भगवान् ही अज्ञान में डूबे हुए इस देश की रक्षा करें!

घर्षण-स्नान

ब्रह्मचर्य का सम्बन्ध इन्द्रियों से है और इन्द्रियों का सम्बन्ध शरीर से है। यदि शरीर पवित्र और स्वस्थ रहेगा तो इन्द्रियाँ भी पवित्र ही रहेंगी। और यदि शरीर पवित्र तथा स्वच्छ न होकर रोगी और गन्दा रहा तो इन्द्रियाँ कभी भी पवित्र न हो सकेगीं। गन्दा आदमी आलसी होता है। उसके शरीर में अनेक रोग होते हैं। फिर वह ब्रह्मचारी कैसे हो सकता है? कैसे अपनी वीर्य-शक्तियों को रोककर अपने को बलवान बना सकता है। ब्रह्मचारी बनने के लिए शरीर की पवित्रता की अत्यंत आवश्यकता है। अतः मन से पवित्र होने के साथ-ही-साथ शरीर से भी पवित्र बनो।

जिस भाँति हम नाक और मुँह से स्वाँस लिया करते हैं, उसी तरह हमारा शरीर भी प्रतिदिन स्वाँस लेता रहता है। हमारे शरीर में अनेकों रोम-छिद्र हैं। शरीर इन्हीं रोम-छिद्रों के द्वारा साँस लिया करता है। जब शरीर के छिद्र बन्द हो जाते हैं, उनके मुँह पर मैल जम जाता है, तब शरीर रोगी और अस्वस्थ-सा बन जाता है। इन मलों को दूर करने के लिए प्रतिदिन घर्षण स्नान की आवश्यकता होती है। घर्षण-स्नान से रोम-छिद्रों पर जमा हुआ मल दूर हो जाता है। शरीर में शुद्ध वायु का प्रवेश होता है। मनुष्य तेजस्वी, मेधावी और ब्रह्मचारी बनता है। पर आज-कल लोग स्नान की पाबन्दी भर करते हैं। एक लोटे जल में ही उनका स्नान हो जाता है। शरीर में सैकड़ों मन मैल बैठा रहता है। देखकर ही घृणा-सी मालूम होती है। पर, फिर भी वे कहते हैं कि हम प्रदिदिन स्नान करते हैं। स्नान का क्या यही महत्त्व है ? क्या इसी को स्नान करना कहते हैं कि स्नान करने पर मल के हजारों कण शरीर के ऊपर पड़े रहें ? स्नान करनेवालों को दाद-खुजली नहीं होती। पर आजकल लोगों को स्नान करने पर भी दाद-खुजली हुआ करती है। इसका क्या कारण है ? यही कि वे अच्छी तरह स्नान नहीं करते। उनके स्नान का अर्थ केवल एक लोटा जल शरीर पर डाल लेना है।

स्नान से शरीर स्वस्थ होता है। मन में शांति आती है। चित्त में प्रसन्नता का समावेश होता है। अतः प्रतिदिन नियम-

पूर्वक स्नान करना चाहिये। स्नान का सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है। सूर्योदय से पहले प्रतिदिन स्नान कर लेना चाहिये। स्नान के लिए कुएँ का ताजा जल अत्यन्त उत्तम और गुणकारी होता है। सर्दी में पंद्रह मिनट और गर्मी में आधे घंटा तक स्नान करना चाहिये। स्नान करने के पहले अपने शरीर के अंग-प्रत्यंग को तौलिये से खूब रगड़ो। पेट को भी खूब मलो। इससे शरीर में वल और स्फूर्ति आती है। शरीर के तमाम चर्म-छिद्र साफ हो जाते हैं। स्नान करते समय सबसे पहले अपने मस्तिष्क को भिगोओ। इससे स्मरण-शक्ति एवं आँखों की ज्योति बढ़ती है। इसी कारण शास्त्र में इसके लिए यह आदेश भी है—"न च स्नायाद्विना शिरः।" अर्थात् विना सिर को भली प्रकार भिगोये कभी न स्नान करना चाहिये। सिरको भिगो लेने के वाद, शरीरके सब अंग पर पानी डालो। और फिर हाथ से अपने अंग को भली प्रकार रगड़ो। स्नान कर लेने के पश्चात् तौलिये से शरीर के अंग-प्रत्यंगों को पोंछो। इससे शरीर में गर्मी उत्पन्न होती है और बचे-खुचे मल साफ हो जाते हैं। इसके वाद सूखा वस्त्र पहन कर कुछ धूप में टहलो। बस, इसीका नाम घर्षण-स्नानहै। और इसीसे शरीर आनन्द तथा स्फूर्ति का भंडार वन जाता है। यदि प्रतिदिन नियमित रूप से इस नियम का पालन किया जाय तो मनुष्य कभी भी अस्वस्थ न हो। उसके शरीर का तेज और वीर्य सदैव दृढ़ तथा निर्मल बना रहे।

स्नान स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी तो है, परन्तु इसके नियमों के विरुद्ध कार्य करने से कभी-कभी यह स्वास्थ्य-विनाशक भी बन जाता है। अतः स्नान के कुछ उत्कृष्ट नियमों का जान लेना अत्यन्त आवश्यक है। यहाँ हम एक बंगाली पुस्तक के आधार पर स्नान के कुछ सर्वोत्कृष्ट नियमों का उल्लेख कर रहे हैं—

१—गर्मी के दिनों में दो बार स्नान करना चाहिये। गर्मी से शरीर में पसीना निकलता है और पसीना गन्दगी की सृष्टि करता है। यदि दो बार स्नान न किया जायगा तो शरीर दूषित और गन्दा बन जायगा। जाड़े तथा वर्षा-ऋतु में यदि दो बार स्नान न किया जाय, तो विशेष हानि की सम्भावना नहीं।

२—साबुन से मिला हुआ गर्म पानी शरीर के मलों को धो-बहाता है। त्वचाएँ साफ हो जाती हैं। अतः महीने में एक बार साबुन और गर्म पानी के साथ अवश्य नहाना चाहिये। पर प्रतिदिन गर्म पानी का उपयोग करना हानिकर है। इससे ब्रह्मचर्य नष्ट होता तथा मस्तिष्क चञ्चल बन जाता है।

३—नदी और तालाब में नहाना अधिक स्वास्थ्यकर है। समुद्र के जल से स्नान करना अधिक स्वास्थ्य-कारी होता है; किन्तु जिस स्थान पर नदी, तालाब और समुद्र न हों, वहाँ के मनुष्यों को कुएँ का ताजा और शीतल जल ही उपयोग में लाना चाहिये।

४—नदी में स्नान करने से मनुष्य को तैरना पड़ता है। तैरकर नहाना स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इसे हम एक प्रकार का व्यायाम भी कह सकते हैं। इससे शरीर के सब अवयव पुष्ट होते हैं। अंगों में स्फूर्ति और शक्ति बढ़ती है। शरीर सुडौल होता है।

५—बहुत से लोग नहाने के बाद तुरन्त भोजन करने के लिए बैठ जाते हैं। बहुत से ऐसा भी करते हैं कि भोजन करने के पश्चात् तुरन्त स्नान करते हैं। स्नान की ये दोनों रीतियाँ बुरी हैं। इनसे पाचन-शक्ति नष्ट हो जाती है और चित्त में अनेकों प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

६—रोगी तथा अशक्त मनुष्य को प्रतिदिन स्नान करना हानिकर है। ऐसे मनुष्य सप्ताह में एक बार शीतल जल से नहा सकते हैं। उन्हें जल की धार अपने ऊपर धीरे-धीरे छोड़नी चाहिये।

७—स्नान करने के पहले यदि शरीर में कँपकँपी और जाड़ा मालूम हो, तो स्नान न करना चाहिये। इससे कभी-कभी ज्वर और जुकाम हो आता है।

८—नहाने का स्थान खुला और प्रकाशमय हो। शरीर पर उस समय लँगोटी को छोड़कर और कोई वस्त्र न होना चाहिये। नग्न अवस्था में स्नान करना सर्वोत्तम है, पर इस रीति का पालन करना सभी से सभी स्थानों में नहीं हो सकता।

९—स्नान के समय मन की भावनाएँ पवित्र रहनी चाहियें।

स्नान के ये विधान ब्रह्मचारियों के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इनका पालन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इससे स्वास्थ्य में वृद्धि होगी और शरीर में तेज तथा बल बढ़ेगा।

भोजन

भोजन के ऊपर हम पहले भी कुछ लिख चुके हैं; पर अब यहाँ विशदरूप से उसकी चर्चा करना अत्यन्त आवश्यक है। भोजन से हमारे जीवन का घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि हमें भोजन न मिले तो हम अपने शरीर को संसार में नहीं रख सकते। कुछ ही दिनों के बाद हमारे प्राण भोजन के अभाव में इस शरीर को छोड़ देंगे। जिस भोजन की इतनी गुरुतर महिमा है, जिसका इतना महान् अस्तित्व हमारे शरीर के अन्दर छिपा हुआ है, खेद है, हम उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते और अज्ञानतावश अपने ही हाथों अपना विनाश कर डालते हैं।

भोजन से शरीर का स्वास्थ्य स्थिर रहता है। इसी की शक्ति से मानव-शरीर में वीर्य नाम का वह पदार्थ उत्पन्न होता है, जिससे मानव-शक्तियाँ अपने को सुरक्षित रखती हैं। इसलिए प्रत्येक स्वास्थ्य-प्रेमी मनुष्य का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह भोजन के सम्बन्ध में गहरी जानकारी प्राप्त करे। भोजन मनुष्य के जीवन को बनाता और बिगाड़ता है। वही उसका विनाश और विकास करता है। वही उसके हृदय में सदाचार की सृष्टि करता है और वही उसे कुपथ की ओर भी ले जाता है। लोग

आश्चर्य करेंगे; पर आश्चर्य करने की बात नहीं है। यह बताया जा चुका है कि भोजन ही मनुष्य का जीवन है। अतएव मनुष्य जैसा भोजन करेगा, उसके हृदय में स्वभावतः वैसे ही विचार भी उत्पन्न होंगे। और उन्हीं के सहारे वह संसार में अपना कदम भी बढ़ायेगा। पर संसार तो बुरे विचारों से जीता नहीं जा सकता। वह तो एक पवित्र आत्मा की सृष्टि है और पवित्र विचार ही उसके विजय के साधन हैं। फिर ऐसे मनुष्यों की क्या दशा होती है? वे सुविचार और सद्भावना के अभाव में संसार की परिस्थिति में पीस उठते हैं। उनके जीवन का पता तक नहीं चलता। इसलिए प्रत्येक सांसारिक मनुष्य को ऐसा भोजन करना चाहिये, जिससे उसके शरीर में ऐसी शक्तियाँ उत्पन्न हों, जो आसुरी शक्तियों पर सहज ही में विजय प्राप्त कर सकें।

संसार में ब्रह्मचर्य की शक्ति सबसे प्रबल शक्ति है। केवल एक इसी शक्ति से मनुष्य सारे संसार में उथल-पुथल मचा जा सकता है। पर ऐसी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हमें सात्विक भोजन की आवश्यकता होती है। मांस-मदिरा तथा इसी प्रकार की विदूषित वस्तुएँ खानेवाला मनुष्य कभी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। ब्रह्मचारी बनने के लिए केवल सात्विक आहार करना चाहिये। भगवद्गीता में इसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है—

आयुः सत्त्वबलारोग्यं सुखप्रीतिविवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धा स्थिरा हृद्याहाराः सात्विका प्रियाः॥

जो आहार आयु, ओज, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति बढ़ाने वाला हो तथा जो सरस, चिकना, गुरु और रुचिवर्द्धक हो, वही भोजन सात्विक विचारवाले मनुष्यों को प्रिय होता है। इस सात्विक आहार से मानव-शरीर में वीर्य की शक्ति बढ़ती है। ब्रह्मचारी बनने में सहायता प्राप्त होती है। बुद्धि का विकास होता है। काम, क्रोध मद और लोभ का नाश होता है। स्वास्थ्य सबल होकर पुष्ट होता है। एक दूसरे स्थान में लिखा हुआ है—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।
स्मृति लंभे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः प्रवर्तते॥

अर्थात् भोजन की पवित्रता से सत्त्व की पवित्रता होती है। सत्त्व की पवित्रता से बुद्धि निर्मल तथा दृढ़ विचारवाली बन जाती है। फिर बुद्धि की पवित्रता से मुक्ति भी सुलभता से प्राप्त होती है। यह है, सात्विक भोजन की महिमा। इसके विपरीत राजसिक और तामसिक स्वभाव का भोजन करने से ब्रह्मचर्य का विनाश होता है। यहाँ हम उन वस्तुओं का यथाशक्ति नामोल्लेख कर रहे हैं जो तामसिक तथा राजसिक कहलाती हैं। प्रत्येक ब्रह्मचारी को इनसे बचने की चेष्टा करनी चाहिये।

राजसिक भोजन—जो अत्यन्त उष्ण, चरपरा, अत्यन्त मीठा, खट्टा, तिक्त, नमकीन, खटाइयाँ तथा बाजार की बनी हुई मिठाइयाँ, लहसुन, प्याज, मिर्च, मिरचा, हींग, भाँग, गाँजा, चरस इत्यादि।

तामसिक भोजन—बासी, रसहीन, गला-सड़ा। जिन सम्पूर्ण वस्तुओं के खाने से धार्मिक बुद्धि का विनाश हो जाता है, उन सभी वस्तुओं की गणना तामसिक आहार में है।

ब्रह्मचारियों के लिए सात्विक आहार ही सर्वोत्तम है। सात्विक आहार भी उन्हें थोड़ा और सूक्ष्म करना चाहिये। अधिक भोजन कर लेने से शरीर में औदास्य भाव की वृद्धि होती है। मन पापों की ओर दौड़ने लगता है। अनेक भयङ्कर रोग हो जाते हैं। स्वप्न-दोष विशेषतया एक इसी कारण से होता है। अतिभोजन के सम्बन्ध में एक स्थान पर लिखा हुआ है—

अनारोग्यमनायुष्यम् स्वर्ग्यं चातिभोजनम।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं, तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥

भोजन की अधिकता से अस्वस्थता बढ़ती है। आयु-शक्ति क्षीण होती है। शरीर में अनेकों रोग पैदा होते हैं। मन पाप-कर्म में प्रवृत्त हो जाता है। और लोगों में अपवाद भी फैलता है। अतएव ब्रह्मचारियों को सात्विक भोजन भी सावधानी से करना चाहिये। बासी सात्विक भोजन तामसी हो जाता है। इसलिए उन्हें इससे भी दूर रहना चाहिये।

भोजन शांत और सुस्थिर मन से किया जाय। चित्त में प्रसन्नता के भाव हों। और अपने समूचे रूप में ही गले के नीचे न उतार दिये जायँ। बल्कि उन्हें दाँतों से खूब पीस-पीसकर खाना चाहिये। इससे भोजन का भली प्रकार रस निर्माण हो जाता है।

पाचन-शक्ति में भी प्रगति आती है। शरीर भी स्वस्थ और सबल बनता है। शरीर से रोग दूर भागते हैं। इसलिए भोजन करते समय कभी ग्लानि और क्रोध के भाव चित्त में न लाना चाहिये।

फलाहार—फल प्राकृतिक पदार्थ होते हैं। इनमें स्वभावतः ऐसे गुण छिपे रहते हैं, जिनसे स्वतः जीवन-शक्तियों का विकास होता है। प्राचीन काल में भारतीय ऋषि-मुनि फलों पर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। पर उनकी चेतना-शक्तियाँ कितनी बढ़ी हुई थीं! उनमें कितना आत्मबल भरा हुआ था! वह किस भाँति ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा कर संसार में अपने नाम को अमर कर गये। इस समय आजकल भी व्रतों के अवसर पर फलों का उपयोग किया जाता है। इसका यही कारण है कि फलों की शक्तियाँ मनुष्य को ब्रह्मचारी बनाने में सहायता देती हैं। प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन फलों का उपयोग करना चाहिये।

फलों के खाने से कितने लाभ होते हैं, यहाँ सूक्ष्मरूप से हम उनका वर्णन कर रहे हैं—

१—फलों से मनुष्य का स्वास्थ्य सबल होता है। उसकी जीवन-शक्तियों का विकास होता है। बुद्धि निर्मल होती है। वासनाओं का नाश होता है। आयु में वृद्धि होती है। चित्त प्रसन्न और सुस्थिर रहता है।

२—मन बुरी भावनाओं की ओर नहीं झुकता। हृदय ज्ञान के प्रकाश से आलोकित होता है।

३—शरीर स्वस्थ रहता है। निर्बलता दूर हो जाती है। पाखाना साफ होता है। कब्ज की शिकायत नहीं रहती।

४—वीर्य पुष्ट होता है। शरीर कांति और तेज का भांडार बन जाता है। इन्द्रियाँ मन को विचलित नहीं करतीं।

दुग्धाहार

दूध इस संसार में एक अमूल्य वस्तु है। इसके पीने से मानव-शरीर सबल तथा पुष्ट बनता है। वीर्य-धारण की शक्ति उत्पन्न होती है। प्राचीन काल में भारतीय ऋषि दूध के ही ऊपर अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनका यही भोजन था। उनके पास एक-न-एक गाय सदा मौजूद रहती थी। वे गाय का ताजा दूध प्रतिदिन पान किया करते थे। गाय के दूधों में अनेकों गुणकारी वस्तुएँ मिली रहती हैं। इसीसे उन ऋषियों का स्वास्थ्य अत्यन्त बलवान और शारीरिक शक्तियाँ अत्यन्त प्रबल होती थीं। वैद्यक शास्त्र में भी दूध के अनेकों गुण बताये गये हैं। प्रत्येक ब्रह्मचारी को गाय का दूध प्रति दिवस पीना चाहिये। यहाँ हम दूध के कुछ गुणों का उल्लेख, एक वैद्यक ग्रन्थ के अनुसार कर रहे हैं—

१—गाय का ताजा दूध मन में शान्ति उत्पन्न करता है। यह बल और वीर्य का विकास करता है।

२—मन में धार्मिक भाव उत्पन्न होते हैं। शरीर में साहस का संचार होता है। मस्तिष्क में शीतलता तथा स्फूर्ति आती है।

३—वीर्य-सम्बन्धी अनेक रोगों का विनाश होता है।

४—मन तथा हृदय की शक्तियाँ पुष्ट होती हैं।

सत्संग

संगति के ऊपर दूसरे स्थान पर हम बहुत कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। अतः यहाँ अब अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। संगति का मनुष्य के हृदय पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। बड़े-बड़े अनाचारी और दुराचारी मनुष्य की सत्संगति के प्रभाव से सुधर कर सदाचारी बन जाते हैं। तथा इसके प्रति-कूल बड़े-बड़े सदाचारी मनुष्यों का सदाचार दुर्जनों के साथ से नष्ट हो जाता है। इसलिए संसार में बहुत कुछ सोच-समझ करके ही किसी की संगति करनी चाहिये। बुरे मनुष्यों का कभी साथ न करे। सदैव अच्छे लोगों का ही साथ करे। उन्हीं के पास बैठे-उठे। उन्हीं से बातें करें। उन्हीं से सांसारिक सम्बन्ध स्थापित करे। सत्संग की महिमा, गोस्वामी तुलसीदास जी ने बड़े अच्छे शब्दों में गाई है। देखिये—

> तात ! स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
> तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसंग॥

वेद, शास्त्रों में भी इसी प्रकार सत्संग की महिमा पाई जाती है। सत्संग से बुद्धि का विकास होता है। हृदय में धार्मिक भाव-नाएँ जागृत होती हैं। मन सदाचार और ब्रह्मचर्य की ओर प्रवृत्त होता है। मनमें भोग-विलास की निःसारता के प्रति भाव उदय होते हैं। शारीरिक तथा मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी को सदैव ही अच्छे मनुष्यों के साथ बैठना चाहिये। दुर्जनों से, उन्हें पाप से भी अधिक घृणा करनी चाहिये।

सद्ग्रन्थावलोकन

पुस्तकें ज्ञान से भरी रहती हैं। उनमें अनेकों प्रकार की बातें पाई जाती हैं। उनसे मन का मनोरंजन होता है। साथ ही हृदय में नये विचारों की शक्ति भी जागृत होती है। और उन्हीं शक्तियों के अनुसार मन अपने लिये मार्ग तैयार करता है। यह रास्ता कभी कल्याणकारी सिद्ध होता है और कभी खतरनाक। खतरनाक वह तभी सिद्ध होता है, जब बुरे विचारवाली पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ब्रह्मचारियों के लिए ऐसा ज्ञान विषैला होता है। उन्हें कभी कामशास्त्र की पुस्तक हाथ में भी न लेनी चाहिये। उपन्यास और प्रेम-सम्बन्धी नाटक भी उन्हें न पढ़ने चाहियें। उपन्यासों में बहुत-से ऐसे पात्र होते हैं, जिनका चरित्र पाप की भावनाओं से पूर्ण होता है। उन उपन्यासों और नाटकों से उनकी ब्रह्मचर्य-वृत्ति में धक्का लगने की आशंका रहती है।

ब्रह्मचारियों के लिये सद्ग्रन्थ ही सबसे उत्तम हैं। संसार में सद्ग्रन्थों से बढ़कर दूसरा कोई साथी नहीं। इनमें वह ज्ञान भरा रहता है, जिससे मनुष्य की मानवता का विकास होता है। इसमें ऐसी शक्तियाँ अन्तर्हित रहती हैं, जिन्हें पाकर मनुष्य के हृदय का साहस चमक उठता है। अमेरिका के एक मनुष्य का कथन है कि यदि ईश्वर मुझसे कोई चीज माँगने को कहे, तो मैं उससे

कहूँगा कि "मेरे पास सद्ग्रन्थों का अभाव न हो।" सचमुच ही वह मनुष्य बड़ा भाग्यशाली होता है। सूक्ति का वाक्य है:—

यस्यास्ति सद्ग्रन्थविमर्श भाग्यं।
किं तस्य शुष्कैश्चपला विनोदैः॥

जिसके भाग्य में सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना बदा है, उसके लिए लक्ष्मी के शुष्क विनोद किस काम के! सूक्ति के इस कथन के अनुसार सद्ग्रन्थ ही संसार में अमूल्य धन है। प्रत्येक मनुष्य को इनकी रक्षा करनी चाहिये। सद्ग्रंथों से मन की बुरी चिन्तायें मिट जाती हैं। हृदय में सच्चे ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है। विषय की वासनायें दब जाती हैं। मन तथा मस्तिष्क में शान्ति के भाव उदय होते हैं। उद्योग और परिश्रम का पाठ सिखने को मिलता है। इसलिये ब्रह्मचारियों को सदैव सद्ग्रन्थ ही पढ़ने चाहिये।

व्यायाम

मानव शरीर के लिये शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता रहती है। शक्ति से ही मन की इन्द्रियाँ संयम की डोरी में बाँधी जाती हैं, और शक्ति से ही मनुष्य काम की वासनाओं पर विजय प्राप्त करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि जो निर्बल होता है, जिसके शरीर में शक्तियों का अभाव होता है, वह अधिक कामी और विलासी होता है। वीर्य की प्रबल उत्तेजना को शान्त करने में वह प्रायः असमर्थ-सा होता है, और इधर-उधर लोलुप कुत्तों

की भाँति वासना की आग में वीर्य का सर्वनाश किया करता है। ऐसे ही मनुष्यों के द्वारा समाज और राष्ट्र के अन्दर पाप का बीजारोपण होता है। अनेक प्रकार के संक्रामक रोग फैलकर भीतर-ही-भीतर समाज को अशक्त बनाने लगते हैं। अतः ऐसे मनुष्यों की उत्पत्ति को समाज के अन्दर रोकना चाहिये।

इन मनुष्यों तथा इनकी असमर्थता का विनाश तभी हो सकता है, जब इनमें व्यायाम की प्रथा का प्रचार किया जाय। हम तो कहेंगे कि समाज की ओर से ऐसे नियम होने चाहिये; जिनके द्वारा विवश होकर व्यायाम करना पड़े। ब्रह्मचर्य के लिये व्यायाम एक प्रबल साधन है। वीर्य का रोकना तभी सम्भव हो सकता है, जब मनुष्य की इच्छा सद्भावों से भरी हो तथा उसके शरीर की शक्तियाँ उच्छृंखल न होकर गम्भीर हों। उन्हें काम का प्रबल झकोरा इधर-से-उधर न हिला-डुला सके। व्यायाम के द्वारा शरीर में इन दोनों साधनों का समावेश होता है। जब मनुष्य व्यायाम करने लगता है, तो उसके शरीर के सम्पूर्ण अंगों को क्रियाशील बनना पड़ता है, तथा परिश्रम भी करना पड़ता है। परिश्रम और अभ्यास शक्ति का उत्पादक है। अतः व्यायाम से शरीर का अंग-प्रत्यंग एक अद्भुत शक्ति से भर जाता है। हृदय में साहस के भाव लहराने लगते हैं। मुख पर अद्भुत कान्ति दौड़ उठती है, और मन सदिच्छाओं का भण्डार-सा बन जाता है। सुश्रुत संहिता में लिखा है:—

शरीरोपचयः कान्तिर्गात्राणां सुविभक्तता ।
दीप्ताग्नित्वमनालस्यं, स्थिरत्वं लाघवं मृजा ॥
श्रम क्लम पिपासोष्ण शीतादीनां सहिष्णुता ।
आरोग्याञ्चापि परमं, व्यायामादुपजायते ॥

अर्थात् व्यायाम से शरीर की कान्ति बढ़ती है । अंग-प्रत्यंगों का गठन अत्यन्त भला-सा मालूम होता है । अग्नि दीप्तता, स्थिरता, निरालस्यता, स्फूर्ति, परिश्रम, सर्दी-गर्मी आदि के सहने की शक्ति और उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होता है ।

प्राचीन काल में भारतवर्ष में व्यायाम की बड़ी प्रबल मर्यादा थी । बच्चे तक व्यायाम करते थे । उन्हें व्यायाम का महत्त्व सिखाया जाता था । वे अपने समय का उचित भाग व्यायाम में व्यय करते थे । यही कारण था कि उस समय भारत के मनुष्य बली और मेधावी होते थे । आज भी उस प्रथा का थोड़ा-बहुत रूप कहीं-कहीं देखने को मिलता है । गाँव के कुछ लोग व्यायाम की क्रिया का पालन करते हैं । पर अधिकांश लोग ऐसे हैं, जो व्यायाम के महत्त्व को नहीं जानते । उनकी दृष्टि में व्यायाम निकृष्ट श्रेणी के मनुष्यों का काम है । दिन-रात फैशन से लदे रहते हैं । इत्र और गुलाब की हवायें उनके शरीर पर नाचती रहती हैं । फिर मिट्टी से भरे हुये अखाड़े में कैसे उतरें । उनके शरीर का सौन्दर्य नष्ट हो जायगा और वे फिर बाजार में लज्जा बेचने वाली घृणित पात्रियों के यहाँ कैसे सम्मान प्राप्त कर सकेंगे ।

किन्तु उनका स्वास्थ्य कैसा है ? जवानी में ही कमर झुक गई है। चलते हैं तो मालूम होता है मानों कोई साठ वर्ष का बूढ़ा जा रहा है। शरीर की चमड़ियों पर झुर्रियाँ पड़ रही हैं मुँह सूखकर काँटा हो गया है। आँखें पलकों के अन्दर धँस गई हैं। पीठ की हड्डियाँ साफ साफ दिखाई दे रही है। धिक्कार है ऐसे युवकों को! इनसे समाज और राष्ट्र का क्या कल्याण हो सकेगा ? एक जर्मन प्रोफेसर ने अपने देश के युवकों को व्यायाम की शिक्षा देते हुए कहा था कि:—"अच्छा हो वह युवक मर जाय, जो व्यायाम से अपने शरीर की शक्तियों को पुष्ट नहीं करता ! कारण युवक की शक्तियों का समाज और राष्ट्र भूखा है।"

कितने मार्केकी बात है ? पर भारतीय युवक इसका क्या महत्व समझ सकेंगे ? वे तो विलासिता के गोद में खेल रहे हैं, वे तो अपने मन के संयम को दूर फेंककर पाप की भावनाओं से क्रीड़ा कर रहे हैं ? पर अब भी समय है। प्रत्येक भारतीय युवक का धर्म और कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम अवश्य करे। प्रोफेसर राममूर्ति के उपदेशों के अनुसार मैं यहाँ कुछ व्यायाम के नियमों का उल्लेख कर रहा हूँ:—

१—व्यायाम प्रत्येक मनुष्य को करना चाहिये। पर इसकी गति धीरे-धीरे बढाई जाय। अधिक व्यायाम भी हानिकारक होता है।

२—व्यायाम करते समय भली प्रकार ध्यान रहे कि परिश्रम का भार प्रत्येक अँगपर पड़े। अँगों का सँचालन धीरे धीरे हो।

३—व्यायाम के समय मुख बन्द रहना चाहिये। श्वास-प्रश्वास की क्रिया नाक ही द्वारा पूरी की जाय। श्वास धीरे-धीरे छोड़ना तथा ग्रहण करना चाहिये। व्यायाम का अभ्यास प्राणायाम के साथ करना चाहिये। इससे मनुष्य का सीना चौड़ा, बलशाली और सुदृढ़ बनता है।

४—व्यायाम के समय मन में सदैव वीर भाव होना चाहिये। आदर्श ऊँचा हो। मन, भीतर ही भीतर किसी वीर मूर्त्ति के स्थिरता की कल्पना करता हो।

५—व्यायाम करने के पश्चात् कुछ देर तक टहलना चाहिये। इसके बाद ठंढाई पीना चाहिये। ठँढाई में—आठ दस बादाम, एक माशा धनियाँ, पाँच काली मिर्च के दाने, दो छोटी इलायची और थोड़ी-सी मिश्री हो। सर्दी के दिनों में इन चीजों में थोड़ी-सी सोंठ भी मिला लेना चाहिये। सब वस्तुओं की मात्रा अपनी शक्ति के अनुसार बढ़ाई भी जा सकती है।

६—व्यायाम करने वाले को सात्विक भोजन ही करना चाहिये। मांस तो उसे कभी हाथ से भी न छूना चाहिये। मांस खाने से शरीर में क्रूरता और आलस्य का भाव प्रगट होता है।

प्रत्येक ब्रह्मचारी और युवक को प्रोफेसर राममूर्ति के उक्त नियमों के अनुसार प्रतिदिन व्यायाम करना चाहिये। प्रोफेसर राममूर्ति आज की दुनियाँ में व्यायाम के प्रबल उदाहरण हैं। व्यायाम ने ही उनके शरीर में वह शक्ति भर दी है, जिसके

तप पर वे आज कलियुग के भीम कहे जाते हैं। यदि तुम भी संसार में वीर और ब्रह्मचारी बनना चाहते हो तो राममूर्ति के बनाये हुये नियमों के अनुसार प्रतिदिन व्यायाम करो।

उपवास

जब हम अपने प्राचीन धर्मशास्त्रों को पढ़ने लगते हैं, तो हमें चार अक्षरों से बना हुआ एक छोटा-सा शब्द मिलता है। इस शब्द का नाम उपवास है। ईसाइयों की बाइबिल और मुसलमानों के कुरान में भी इस शब्द की व्यापकता है। प्राचीन धर्म गुरुओं ने भी इसका बार-बार नाम लिया है और व्रतों पर उपवास करने की आज्ञा दी है। इसका वास्तविक रहस्य भी उन्हीं धर्मशास्त्रों में पाया जाता है। मनुष्य प्रतिदिन भोजन करता है। अग्नि प्रतिदिन उसके शरीर के भोजन की सामग्रियों को जलाती और उनका जीवन-रस तैयार करती है। इस प्रतिदिन की संचालन गति में, मनुष्य की असावधानी के कारण कभी-कभी अनियमितता-सी आ जाती है और मनुष्य अजीर्ण आदि रोगों का शिकार हो जाता है। शरीर में आलस्य और दौरात्म्य भावनायें जग उठती हैं। मन पाप की ओर झुक पड़ता है। वीर्य का विनाश होने लगता है। उपवास इन्हीं बुराइयों को दूर करने का प्रबल साधन है। उपवास से मन की भावनायें पवित्र होतीं एवं हृदय शुद्ध रहता है। मस्तिष्क में नई चेतना के साथ नया जीवन उत्पन्न होता है शक्ति बढ़ती है। यही उपवास का रहस्य है।

पर आजकल लोग उपवास की प्रथा का पालन ठीक रीति से नहीं करते। उपवास का तात्पर्य है, कुछ न खाना। पर आज कल कौन ऐसा करता है? व्रतों के अवसर पर प्रत्येक घर का प्रत्येक प्राणी उपवास करता है। पर कदाचित् ही कोई निराहार रहता हो! उस दिन, अन्य दिनों की अपेक्षा उनके घर का पैसा अधिक व्यय होता है। उस दिन वे दूध भी खाते हैं और मलाई भी। आलू भी खाते हैं तथा कंद और सिंघाड़े भी। नमकीन भी खाते हैं और मिठाई भी। इसे हम व्रत नहीं कहते। न इससे कुछ लाभ ही होता है। हाँ, शारीरिक शक्तियों का विनाश अवश्य होता है। उनमें ताजगी और नया जीवन नहीं आता। मन की बुरी भावनायें भी नष्ट नहीं होतीं। मलीनता ज्यों की त्यों बनी रहती है।

इस समय व्रत के महान् उद्देश्यों को महात्मा गाँधी ने अच्छी तरह समझाया है। वे जितना व्रत के नियमों का पालन करते हैं, शायद ही संसार का कोई दूसरा करता हो! यदि मैं भूलता नहीं तो महात्माजी सप्ताह में एक दिन अवश्य व्रत रहते हैं। व्रत से हृदय शुद्ध होता है। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी को व्रत के महान् उद्देश्यों को समझना तथा उन तक पहुँचने की चेष्टा करनी चाहिये।

खड़ाऊँ

ब्रह्मचर्य काल में प्रत्येक मनुष्य को ऐसी ही वस्तु का उपयोग करना चाहिये जो काम की इच्छाओं को रोक सके। जो वासना-

ओं को मिटाकर मनुष्य को व्रतवान बना सके। अन्य साधनों के साथ ही साथ खड़ाऊँ भी इसके लिए एक प्रबल साधन है। खड़ाऊँ से काम की इच्छाओं का शमन होता है। मनुष्य के पैर के अँगूठे और जननेन्द्रिय की नली एक दूसरे से मिली हुई हैं। खड़ाऊँ की खूटियाँ, अँगूठे की नसों के द्वारा जननेन्द्रिय की नसों को दबाये रहती हैं, उनमें उत्तेजना और चञ्चलता नहीं उत्पन्न होने पाती। इसके अतिरिक्त पाँव सदैव खुले रहते हैं। उन्हें स्वच्छन्द वायु सदा मिलती ही रहती है। पैर की नसें, स्वच्छन्द वायु को सब समय ग्रहण करती हैं। और शरीर के अन्यान्य भागों को भी बाँटती हैं। इसलिए खड़ाऊँ का उपयोग करना अत्यावश्यक है।

प्राचीन काल में, भारत में खड़ाऊँ का ही अधिक उपयोग होता था। ब्राह्मण और पूजा पाठ करनेवाले मनुष्य विशेष रूप से इसका उपयोग करते थे। इस समय भी अनेको लोग खड़ाऊँ पहनते हैं बहुत-से साधु-सन्यासी ऐसे भी देखे जाते हैं, जो खड़ाऊँ पहनकर सैकड़ों मील की यात्रा पूरी कर डालते हैं। इसमें एक रहस्य है। और वह रहस्य यह है कि खड़ाऊँ मनुष्य को ब्रह्मचारी बनाता है। खड़ाऊँ का अच्छा होना उसकी खूटियों पर निर्भर है। खूटियाँ गोल, बड़ी तथा नीचे गद्देदार हों। ऐसी खूटियोंवाला खड़ाऊँ अच्छा और स्वास्थ्यप्रद कहा जाता है।

प्राणायाम

प्राणायाम एक अद्भुत शक्ति है। इससे मानव-जीवन का

विकास होता है। शरीर की शक्तियाँ सुदृढ़ होती हैं। योगी इसी प्राणायाम के द्वारा अखण्ड योग की साधना करते हैं। प्राचीन काल में भारत का प्रत्येक पुरुष प्राणायाम-विज्ञान को भली-भाँति जानता था। सभी किसी-न-किसी अंश में प्राणायाम करते भी थे। पर, आज हम अपनी उन शक्तियों को भूल गये हैं। पाश्चात्य सभ्यता के प्रवाह में अपने आपको खो बैठे हैं। हम दूसरे की शक्तियों को देख कर आश्चर्य करते हैं, हमारी आँखें दूसरों की विज्ञान वस्तुओं को देखकर चकाचौंध हो जाती हैं। पर हम यह विचार नहीं करते कि यह सम्पदा किसकी है? कौन इसका पहले उपभोग कर चुका है। जिस दिन हम इसका विचार करेंगे। और गवेषणा से काम लेंगे तो हमें यह भली-भाँति विदित हो जायगा कि यह सब वस्तुएँ हमारे ही पूर्वजों के मस्तिष्क से निकली हैं। पर हम उन्हें भूल गये हैं। और दूसरे, उसका उपयोग कर रहे हैं। यदि हम अपने प्राणायाम-विज्ञान को भूल न गये होते तो आज यह दुराचार और अज्ञानता पूर्ण वातावरण हमारी नजरों के सामने न आता। हम रोगी और क्षीणकाय न होते। हमारे बच्चे असमय में ही भयानक रोगों के शिकार हो काल के गाल में न जाते। किसी ने सच कहा है कि जो अज्ञानता में पड़कर अपनी पैतृक सम्पत्ति को त्याग देता है, उसे अनेक प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ता है।

आज हमारी यही दशा है। हममें से अनेकों प्राणायाम के

विज्ञान को नहीं जानते। प्राणायाम, जीवन के लिये संजीवनी शक्ति है। मनु ऋषि का कथन है:—

दह्यन्ते ध्मायमानानां, धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात् जैसे अग्नि में डालकर जलाने से धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के सम्पूर्ण रोगों का विनाश हो जाता है। प्राणायाम, गृहस्थ-योगी सभी के लिये अत्यन्त कल्याणकर है। इससे वीर्य का रक्षण होता है। वीर्य तरल होने के कारण पानी की भाँति नीचे की ओर झुकता है। वीर्य के निकल जाने से शरीर निस्तेज और साहस-हीन हो जाता है। पर प्राणायाम मनुष्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर उसकी ब्रह्मचर्य शक्ति को सुदृढ़ करता है। शरीर में नवजीवन का संचार होता है तथा मानसिक शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं।

प्राणायाम के अनेकों भेद हैं। पर विशेष रूप से केवल तीन हैं, शेष इन्हीं तीनों के अंतर्गत माने जाते हैं। पहला पूरक, कुम्भक रेचक के साथ; दूसरा कुम्भक के साथ; तीसरा कुम्भक हीन होता है। तीनों में, दो की विधियाँ इस प्रकार हैं:—

१—पूरक, नासिका के पीछे बायें छेद को दाहिने हाथे के अँगूठे से दबाकर वायु को शनैः-शनैः भरना।

२—कुम्भक, बीच की दोनों अँगुलियों से नाक के बायें छेद को बन्दकर पेट में भरी हुई हवा को रोकना।

३—रेचक, और फिर नाक के बायें छेद द्वारा पेट में भरी हुई हवा को धीरे धीरे बाहर निकाल देना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्य को प्राणायाम करना चहिये। तीन प्रातःकाल और तीन सायंकाल। प्राणायाम करने का स्थान अत्यन्त पवित्र हो। मन भी पवित्र और शुद्ध हो। किसी प्रकार की गन्दगी न हो। चारों ओर से स्वच्छन्द तथा निर्मल वायु आती हो। प्राणायाम करते समय सिद्धासन का उपयोग करना चाहिये। सिद्धासन से किया हुआ प्राणायाम अत्यन्त स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। प्राणायाम से होने वाले लाभ का हम यहाँ सूक्ष्म रूप से वर्णन करते हैं:—

१—प्राणायाम करनेवाला मनुष्य काम की शक्तियों पर विजय प्राप्त करता है। उसके हृदय में वे दूपित विचार कभी नहीं उठते, जिनसे मनुष्य के मनुष्यत्व का विनाश होता है।

२—बुद्धि का विकास होता है। शारीरिक शक्तियों की वृद्धि होती है।

३—शरीर में किसी प्रकार के रोग नहीं रह जाते, और न आने की ही सम्भावना रहती है।

४—वीर्य-शक्तियाँ पुष्ट होती हैं।

५—हृदय में आत्मज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होता है।

६—मन की प्रवृत्तियाँ कुमार्ग की ओर नहीं जातीं।

७—मनुष्य स्वस्थ बनकर दीर्घजीवी होता है।

लँगोट

ब्रह्मचर्य साधन के लिए लँगोट एकमात्र साधन है। इससे जनेन्द्रिय की उत्तेजना दबी रहती है। मन में वीरता तथा पवित्रता के भाव उत्पन्न होते हैं। अंडकोष लटककर नीचे नहीं झुकने पाते। उनमें वृद्धि होने की बहुत कम आशंका रहती है। बहुत-से मनुष्यों का खयाल है कि लँगोट बाँधना बुरा है। इससे मनुष्य की वीर्य-शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और वह नपुंसक बन जाता है। यह बिलकुल गलत धारणा है। अनेकों वीर मनुष्यों का यह अनुभव है कि लँगोट बाँधने से वीर्य की शक्तियाँ सुदृढ़ होती हैं। मन संयम-शील बनता है। हाँ, पाप-विचारों का अवश्य नाश हो जाता है। कामियों की भाँति जनेन्द्रिय में बार-बार उत्तेजना नहीं उत्पन्न होती। चित्त शांत और सुस्थिर रहता है।

लँगोट से वीर्य की रक्षा होती है। प्रत्येक सन्यासी और ब्रह्मचारी को प्रतिदिन लँगोट बाँधना चाहिये। लँगोट मुलायम तथा पतले कपड़े का हो। एकहरा लँगोट सर्वोत्तम होता है। दोहरे लँगोट से वीर्य-नाश की आशंका रहती है। लँगोट का बन्धन ढीला हो। लँगोट को प्रतिदिन अच्छी तरह धोकर साफ कर लेना चाहिये। गन्दा होने से प्रायः काछ की बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

वैराग्य की भावना

मनुष्य वैराग्य से ही संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है।

मानव-जीवन के लिए यही एक अमोघ अस्त्र है। जिसने इस अस्त्र को अपने हाथ में ग्रहण कर पाया है, उसे संसार की माया-शक्तियाँ कभी मोह में नहीं डाल सकतीं। उसके लिए संसार निःसार है। संसार की सारी वस्तुएँ शून्य-सी हैं। सौंदर्य-मयी रमणियों का सौंदर्य, उसकी विरागी आँखों के सामने विष के समान है। वह इसको उसी प्रकार छोड़ देता है, जैसे लोग फूटी कौड़ी को छोड़ दिया करते हैं। वह विरागी बनकर अपने हृदय में जिस अखंड प्रेम का राग अलापता रहता है, उसके सामने संसार का प्रेम उसके लिए शून्य है। कामिनियों की सुन्दरता विषैली है।

विरागी पूर्णरूप से ब्रह्मचारी होता है। विषयासक्ति उसके हृदय से निकल जाती है। संसार की वस्तुएँ उसे अपने फन्दे में फँसाने में असमर्थ-सी रहती हैं। अतः प्रत्येक ब्रह्मचारी को विरागी बनना चाहिये। सारे संसार को निःसार तथा स्त्री-पुरुषों के शरीर को केवल हाड़-मांस का ढाँचा समझना चाहिये। वैराग्य की इस भावना से मन सुदृढ़ हो जायगा। संसार की विषय-वासनाएँ, अपने जाल में मन को न फँसा सकेंगी, और ब्रह्मचर्य की साधना पूर्ण रूप से साधी जा सकेगी।

सूर्यताप-सेवन

सूर्य, संसार का प्राण है। संसार का प्रत्येक प्राणी सूर्य-शक्तियों से ही जीवित रहता है। प्रकृति का प्रत्येक पौधा, इसी सूर्य के द्वारा-ही भोजन और शक्ति प्राप्त करता है। यदि सूर्य न हो तो

संसार की सारी सत्ता मिट जाय। एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक सर्वनाश की भेरी वज जाय। पाश्चात्य देश के वैज्ञानिकों ने भी इसी का समर्थन किया है। वेदों ने भी सूर्य की अखण्ड महिमा का गान किया है।

सूर्य की किरणें सबको जीवन-प्रदान करती हैं। इनमें एक अद्भुत शक्ति छिपी रहती है। वैज्ञानिकों का विचार है कि सूर्य की किरणों से मानव-शक्ति का अधिक कल्याण होता है। उनकी शक्तियाँ अत्यन्त स्वास्थ्य-वर्द्धक होती हैं। वीर्य-रक्षा में पर्याप्त सहायता मिलती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को प्रतिदिन सूर्य-ताप सेवन करना चाहिये।

प्रतिदिन घण्टे भर सूर्यताप सेवन करना चाहिये। धूप में सूर्य की ओर मुख करके गम्भीरता पूर्वक बैठ जाना चाहिये। उस समय मन में यह सोचना चाहिये कि सूर्य की किरणें मेरे तन में शक्ति का संचार कर रही हैं। मेरी आत्मा प्रबल बन रही है। वीर्य पुष्ट हो रहा है। शरीर के समस्त रोगों का विनाश हो रहा है, और जीवन-प्रद परमाणु धीरे-धीरे शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। इस तरह प्रतिदिन सूर्यताप का सेवन करनेवाला मनुष्य कुछ दिनों में ब्रह्मचर्य व्रत-पालन की पर्याप्त शक्ति संगृहीत कर लेता है। प्रत्येक ब्रह्मचारी को सूर्यताप का सेवन आवश्यक है।

इन्द्रियों पर संयम

ब्रह्मचर्य व्रत के लिए सबसे प्रबल साधन इन्द्रियों का संयम

है। इन्द्रियाँ ही मनुष्य को बिगाड़ती तथा उसे पाप-मार्ग की ओर ले जाती हैं। मनुष्य के शरीर में कई इन्द्रियाँ हैं। सभी इन्द्रियों के भिन्न-भिन्न विषय और काम हैं। वे प्रतिदिन अपने प्रकृत-स्वभाव के अनुसार काम करतीं तथा सांसारिक वस्तुओं का ग्रहण करती हैं। संसार अनेक वस्तुओं से भरा है। चारों ओर इसकी धारा बह रही है। सौन्दर्य और मोह-मयी भावनाओं की ही प्रबलता है। इन्द्रियाँ इन्हें आकर्षक जानकर स्वभावतः इनकी ओर दौड़ती हैं। यदि मनुष्य ने चेतना से काम न लिया तो प्रायः उसका विनाश-सा हो जाता है। लोलुप इन्द्रियाँ उसकी मानवी-शक्ति को प्रकृति की भयङ्कर ज्वाला में विनष्ट कर डालती हैं।

मानव-जीवन का मूल उद्देश्य संसार पर विजय प्राप्त करना है, और यह तभी सम्भव हो सकता है जब इन्द्रियों को अपने वश में किया जाय। इन्द्रियाँ अवकाश के ही समय, प्रायः पाप-मार्ग की ओर दौड़ती हैं। उसी समम उन्हें उस मोहमयी दुनियाँ की ओर झाँकने का अवसर मिलता है। इसलिए मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उन इन्द्रियों को, जिनसे पाप की सृष्टि होती है, सदैव अच्छे कामों में लगाये रहे। उन्हें बुरे मार्ग की ओर जाने का अवकाश ही न दे। इससे ब्रह्मचर्य-साधन में सहायता मिलेगी। शरीर की शक्तियों का विकाश होगा। और हृदय में आत्मिक ज्ञान का प्रकाश उत्पन्न होगा।

प्रत्येक ब्रह्मचारी को परिश्रम-पूर्ण कार्यों में लगा रहना

चाहिये। अच्छी और सुरुचि-पूर्ण पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिये। ईश्वर की प्रार्थना तथा महापुरुषों के जीवन-चरित्रों का पाठ करना चाहिये। अच्छे भाव वाले गीतों को गाना चाहिये। सद्वृत्तियों का सहारा लेना चाहिये। यही ब्रह्मचर्य के मूल साधन हैं। प्रत्येक ब्रह्मचारी को इन्हीं का सहारा लेना चाहिये।

इन नियमों के अतिरिक्त भी ब्रह्मचर्य-साधन के अनेकों नियम हैं। परन्तु यहाँ वही लिखे गये हैं, जो सुविधा-पूर्वक सर्व-प्राप्त हो सकते हैं। इन नियमों का ध्यान-पूर्वक पालन कर कोई भी मनुष्य अपनी वीर्य-शक्ति को सुरक्षित रख सकता है।

१०—ब्रह्मचर्य पर विद्वानों की सम्मतियाँ

संसार मातृमय है। इसमें पाप-वासना के लिए स्थान ही कहाँ? अतएव ब्रह्मचर्य पालन में कठिनता ही क्या है? माता स्वयं अपने पुत्रों की रक्षा करती है। —रामकृष्ण

वीर्य मनुष्य शरीर का जीवन है। इसके दूषित होने से रक्त का सर्वनाश हो जाता है। और अन्त में ऐसी अवस्था उत्पन्न हो जाती है कि वीर्य-रक्षा का उपाय नजर नहीं आता। —डाक्टर हार्न

ईश्वर के राज्य में सर्वप्रिय बनने के लिए अविवाहित जीवन बिताना अत्यन्त धर्म है। दूसरे शब्दों में ब्रह्मचर्यमय जीवन ही स्वर्गिक आदेश है। —महात्मा ईसा

म: ... ...जीवन सदाचार-मय बनावे। कारण सदाचार ही संसार ... ...क सुख है।

—महात्मा सुकरात

समाज में सुख-शान्ति की वृद्धि के लिए स्त्री-पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करना चाहिये। इससे मानव-जीवन का विकास तथा समाज की भित्ति प्रबल होती है। —महात्मा टाल्स्टाय

यदि संसार में रहकर जीवन की सार्थकता प्रमाणित करनी हो तो वीर्य की रक्षा करके दैवी गुणों की प्राप्ति में सदैव प्रयत्न-शील रहना चाहिये। —स्वामी सत्यदेव

वीर्य से आत्मा को अमरत्व प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक स्त्री-पुरुष को ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन करना चाहिये। —स्वामी नित्यानन्द

वीर्य ही साधुता और दुर्बलता पाप है। अतः बलवान और वीर्यवान बनने की चेष्टा करो। —स्वामी विवेकानन्द
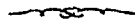
छप गया ! छप गया !!

रूसी-समाज में हड़कम्प मचा देने वाला !

महान ग्रन्थकार तुर्गनेव का सर्वोत्कृष्ट उपन्यास

संघर्ष

यदि आपको आधुनिक युग की घूर्णमान प्रगति के साथ, प्राचीन मनोवृत्ति का संग्राम देखना हो; यदि मानव-हृदय के अंतराल में धाँय-धाँय करती हुई मर्मान्तक वेदनाओं के लोमहर्षक चित्रपट पर दृष्टिपात करना हो; यदि सुख-दुख के घात-प्रतिघात, विचारों के द्वन्द्व एवं आन्तरिक विप्लव-चक्र का साक्षात्कार करना हो, तो रूस के उद्भट कलाविद् तुर्गनेव की इस सर्वोत्कृष्ट रचना को पढ़िये। यह वही ग्रंथ है जिसने **प्रकाशित होते ही, न सिर्फ रूस में वरन् संपूर्ण यूरोप में एक खलबली मचा दी थी। यही कारण है कि विश्व की इनी-गिनी सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में इसकी गणना की जाती है।**

तुर्गनेव संसार-प्रसिद्ध उपन्यासकार माने जाते हैं। उनकी विद्युत-सम लेखनी में मानव-जीवन के ज्वलंत हाहाकार और उद्दाम लालसाओं के स्वरूप के साथ-साथ, हृदय की कोमल भावनाओं का भी चित्रण करने की पूर्ण क्षमता है। पं० जवाहर लाल नेहरू तो तुर्गनेव को विश्ववंद्य टॉल्स्टॉय से भी उच्चतर कलाकार मानते हैं। अतएव ऐसे प्रकाण्ड औपन्यासिक की इस अमर कृति का क्या स्वरूप होगा, यह तो अनुमान ही से जाना जा सकता है। मूल्य २)

बाल-साहित्य

हम दावे के साथ कह सकते हैं कि बाल-ग्रन्थावली की पुस्तकें बाज़ार में सर्वोत्तम हैं और रोचक विषय, बढ़िया रंग-बिरंगी छपाई तथा भड़कीले और आकर्षक आवरण-पृष्ठ को देखकर बच्चे खुशी के मारे उछल पड़ते हैं।

बाल ग्रन्थावली

पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
ज्ञान की पिटारी	१)	विचित्र देश	।≡)
हँसी के चुटकुले	॥)	जादू का देश	॥≈)
फुलझड़ी	॥)	सोने का तोता	।≡)
चन्दा मामा	।≈)	परी देश	॥≈)
जानवरों की कहानियाँ	।≈)	मोतियों की माला	।≡)
मस्तराम	।~)	हँसी की कहानियाँ	॥)
सोने की परी	।~)	उपदेश की कहानियाँ	॥≈)
सियार पंडित	।)॥	सुनहली कहानियाँ	।)
भोंपू	॥)	सोने का हंस	।≈)
हिंडोला	॥)	तन्दुरुस्त बालक	।~)

स्वास्थ्य का सुगम मार्ग ।)

// स्वास्थ्य के प्राकृतिक साधन

रोगों से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य सदा उद्योग करता रहता है। जरा सी शिकायत होने पर तुरन्त डाक्टरों की शीशियों का आश्रय लेता है; परन्तु इसका परिणाम उलटा ही होता है। दवा की शीशियों का जितना ही अधिक आश्रय लिया जाता है उतना ही रोग हमारे शरीर में अधिक जड़ पकड़ता है। यदि हमें सचमुच रोगों से छुटकारा पाना है तो उसके लिए एक मात्र मार्ग प्राकृतिक साधनों का अनुसरण करना है। इस पुस्तक को पढ़कर आपको यह ज्ञात हो सकता है कि रोग क्यों होते हैं और उनसे बचने या उनको दूर करने के लिए प्राकृतिक साधन क्या हैं? यदि आपको स्वास्थ्य से सचमुच प्रेम है तो एक बार यह पुस्तक देखिये। मूल्य केवल १) एक रुपया।

// घरेलू विज्ञान

हम लोग घरेलू जानकारी की बातें कितनी कम जानते हैं, इसका हमें अनुभव नहीं होता। परन्तु समय पड़ने पर थोड़ी-सी जानकारी न होने के कारण बड़ी हानि उठानी पड़ती है, बड़ा धन नष्ट हो जाता है। उस कमी की पूर्ति के लिए इस पुस्तक में घरेलू जानकारी की बातें देने का यत्न किया गया है जिससे स्त्री और पुरुष दोनों अधिक लाभ उठा सकें। यह पुस्तक बड़ी ही उपयोगी और प्रत्येक स्त्री-पुरुष के पढ़ने की वस्तु है। ऐसी सुन्दर पुस्तक का मूल्य केवल १॥) डेढ़ रुपया।

दुलहिन के पत्र

स्त्री-समाज में हलचल मचा देनेवाली अपूर्व पुस्तक। मूल्य ॥)

चन्द्रिका

ओजपूर्ण भाषा में लिखा अपूर्व नाटक। मूल्य ।=)

चित्रादर्श

संसार के उत्कृष्ट कहानी लेखकों की कहानियों का संग्रह

भूमिका लेखक—श्रीगुलाब राय, एम० ए०, एल्-एल्, बी०

आविष्कार की कहानियाँ

(लेखक—जगपति चतुर्वेदी, हिन्दी भूषण, विशारद)

इस पुस्तक में छापे की कल, भाप का इंजन, रेलगाड़ी, मोटर गाड़ी, हवाई जहाज और बिजली आदि के आविष्कारों की कहानियाँ दी गई हैं। यद्यपि यह कहानियाँ बच्चों के लिए ही लिखी गई हैं तथापि इन विषयों के इच्छुक सभी लोग इनको पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं। मूल्य ।।।)

हिन्दी के आचार्य श्रद्धेय पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी लिखते हैं :-

आविष्कार की कहानियाँ देखकर मुझे परमानन्द हुआ। इसका नाम कहानियाँ रखना पुस्तक के विषय के उत्कर्ष को कम करना है। यह पुस्तक नहीं, नवीन ज्ञान की प्राप्ति का बहुत बड़ा साधन है। अतएव अनमोल है। जिन पं० जगपति चतुर्वेदी ने इस पुस्तक का आविष्कार किया है, वे हिन्दी भाषा-भाषी जनों के कृतज्ञता भाजन हैं।

पढ़िये ! पढ़िये !!

रूस के प्रख्यात उपन्यासकार

यूजेन चिरकोव का मर्मस्पर्शी उपन्यास

बंदी

इस पुस्तक में प्रतिभाशाली लेखक ने युवक-हृदय के अंतराल में धधकती हुई विद्रोहाग्नि की विध्वंसकारिणी स्फुलिंग-लपकों का जीता-जागता चित्र खींचा है, उसे देखकर आपका दिल फड़क उठेगा। मिलन-सुख की मधुर कल्पना तथा आकुल उत्कंठा के साथ-साथ वियोग-जनित संताप के मूक-अश्रु-प्रवाह पर दृष्टिपात कर, एवं नैराश्य-जनित करुण-क्रन्दन की हृदय-विदारक रागिनी सुनकर आपकी आँखों से अविरल अश्रु-धारा बह चलेगी। ऐसा कोई भी सहृदय पाठक न होगा, जिसका दिल इस मर्मस्पर्शी रचना को पढ़कर न पसीज उठे। मूल्य ।।।)

प्राणायाम तत्त्व

प्राणायाम का व्यावहारिक स्वरूप

(लेखक—महात्मा ॐ आनन्द स्वरूपजी)

यदि भारतीय योग का सच्चा सुस्वादु रस चखना चाहते हैं, यदि प्राणायाम के तत्त्वों को जानकर स्वास्थ्य-लाभ उठाना चाहते हैं; तो आज ही एक प्रति मँगाकर देखिए। द्वितीय संस्करण मूल्य ।।।)

पता—आदर्श ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग

स्वास्थ्य-सम्बन्धी उत्तमोत्तम पुस्तकें

काम-कुंज—कामशास्त्र-सम्बन्धी जानकारी के लिए एवं दाम्पत्य-जीवन को सुखमय बनाने के लिए इसे एक बार अवश्य पढ़िये। मूल्य ४)

आरोग्य-मन्दिर—नया संस्करण। स्वास्थ्य-सम्बन्धी चुने हुए विद्वानों के लेखों का अपूर्व संग्रह। सजिल्द पुस्तक का मूल्य २)

आहार-विज्ञान—आहार-सम्बन्धी सम्पूर्ण जानकारी करानेवाला विद्वानों द्वारा प्रसंशित एक मात्र ग्रन्थ-रत्न। मूल्य २)

सुखी गृहिणी—स्त्रियों को स्वास्थ्य-सम्बन्धी जानकारी के लिए यह एक ही पुस्तक पर्याप्त है। मूल्य केवल १)

सफलता का रहस्य—जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक सञ्जीवनी है। इसे अवश्य पढ़िए। मूल्य केवल १)

जीवन-रक्षा—बालकों का जीवन सुधारने एवं उन्हें सदाचारी बनाने के लिए इस पुस्तक का पढ़ना आवश्यक है। मूल्य ॥)

दद्रु-चिकित्सा—दाद क्यों होता है कितने प्रकार का होता है और किस प्रकार दूर किया जा सकता है। आदि बातें इससे मालूम होंगी। मूल्य ॥)

सिर का दर्द—सिर में कितने प्रकार का दर्द होता है; कैसे दूर हो सकता है। आदि सम्पूर्ण बातें इससे मालूम कीजिए मूल्य ॥)

दीर्घ जीवन—दीर्घ जीवन के अभिलाषी प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसका एक-एक शब्द बहुमूल्य है। मूल्य केवल ।)

सौंफ-चिकित्सा—संसार भर के सम्पूर्ण रोग इस अकेली सौंफ-द्वारा, इस पुस्तक की सहायता से भगाए जा सकते हैं। मूल्य ।)

अमृतपान—उषः जलपान-द्वारा ही रोग मुक्ति के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। मूल्य केवल ।)

सुखी जीवन—जीवन को आनन्दमय एवं सदाचार पूर्ण बनाने के लिए तथा गार्हस्थ्य जीवन की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए, इसे पढ़िये। मूल्य १)

पता—आदर्श ग्रंथमाला, दारागंज, प्रयाग